विषय-सूची
(उत्तरकाण्ड)

विषय	पृष्ठ-संख्या
१. मङ्गलाचरण	.... १
२. भरत-विरह तथा भरतहनुमान्-मिलन, अयोध्यामें आनन्द	.... २
३. श्रीरामजीका स्वागत, भरत-मिलाप, सबका मिलनानन्द	.... ७
४. राम-राज्याभिषेक, वेदस्तुति, शिवस्तुति	... १४
५. वानरोंकी और निषादकी विदाई	... २०
६. रामराज्यका वर्णन	... २३
७. पुत्रोत्पत्ति, अयोध्याजीकी रमणीयता, सनकादिका आगमन और संवाद	... २७
८. हनुमान्‌जीके द्वारा भरतजीका प्रश्न और श्रीरामजीका उपदेश	... ३६
९. श्रीरामजीका प्रजाको उपदेश (श्रीरामगीता), पुरवासियोंकी कृतज्ञता	... ४१
१०. श्रीराम-वसिष्ठ-संवाद, श्रीरामजीका भाइयोंसहित अमराईमें जाना	... ४४
११. नारदजीका आना और स्तुति करके ब्रह्मलोकको लौट जाना	... ४६
१२. शिव-पार्वती-संवाद, गरुड़-मोह, गरुड़जीका काकभुशुण्डिसे राम-कथा और राम-महिमा सुनना	... ४७
१३. काकभुशुण्डिका अपनी पूर्वजन्मकथा और कलिमहिमा कहना	... ६५
१४. गुरुजीका अपमान एवं शिवजीके शापकी बात सुनना	... ९१
१५. रुद्राष्टक	... ९३
१६. गुरुजीका शिवजीसे अपराधक्षमापन, शापानुग्रह और काकभुशुण्डिकी आगेकी कथा	... ९४
१७. काकभुशुण्डिजीका लोमशजीके पास जाना और शाप तथा अनुग्रह पाना	... ९८
१८. ज्ञान-भक्ति-निरूपण, ज्ञानदीपक और भक्तिकी महान् महिमा	...१०४
१९. गरुड़जीके सात प्रश्न तथा काकभुशुण्डिके उत्तर	...११२
२०. भजन-महिमा	...११५
२१. रामायण-माहात्म्य, तुलसीविनय और फलस्तुति	...११७

श्रीरामायणजीकी आरती

आरति श्रीरामायनजी की।
कीरति कलित ललित सिय पी की॥
गावत ब्रह्मादिक मुनि नारद।
बालमीक बिग्यान बिसारद।
सुक सनकादि सेष अरु सारद।
बरनि पवनसुत कीरति नीकी॥१॥
गावत बेद पुरान अष्टदस।
छओ सास्त्र सब ग्रंथन को रस।
मुनि जन धन संतन को सरबस।
सार अंस संमत सबही की॥२॥
गावत संतत संभु भवानी।
अरु घटसंभव मुनि बिग्यानी।
ब्यास आदि कबिबर्ज बखानी।
कागभुसुंडि गरुड के ही की॥३॥
कलि मल हरनि बिषय रस फीकी।
सुभग सिंगार मुक्ति जुबती की।
दलन रोग भव मूरि अमी की।
तात मात सब बिधि तुलसी की॥४॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्रीरामचरितमानस

सप्तम सोपान

उत्तरकाण्ड

(श्लोक)

केकीकण्ठाभनीलं सुरवरविलसद्विप्रपादाब्जचिह्नं
शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नम्।
पाणौ नाराचचापं कपिनिकरयुतं बन्धुना सेव्यमानं
नौमीड्यं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारूढरामम्॥ १॥

मोरके कण्ठकी आभाके समान (हरिताभ) नीलवर्ण, देवताओंमें श्रेष्ठ, ब्राह्मण (भृगुजी) के चरणकमलके चिह्नसे सुशोभित, शोभासे पूर्ण, पीताम्बरधारी, कमलनेत्र, सदा परम प्रसन्न, हाथोंमें बाण और धनुष धारण किये हुए वानरसमूहसे युक्त, भाई लक्ष्मणजीसे सेवित, स्तुति किये जाने योग्य, श्रीजानकीजीके पति, रघुकुलश्रेष्ठ पुष्पकविमानपर सवार श्रीरामचन्द्रजीको मैं निरन्तर नमस्कार करता हूँ॥ १॥

कोसलेन्द्रपदकञ्जमञ्जुलौ कोमलावजमहेशवन्दितौ।
जानकीकरसरोजलालितौ चिन्तकस्य मनभृङ्गसङ्गिनौ॥ २॥

कोसलपुरीके स्वामी श्रीरामचन्द्रजीके सुन्दर और कोमल दोनों चरणकमल ब्रह्माजी और शिवजीके द्वारा वन्दित हैं, श्रीजानकीजीके करकमलोंसे दुलराये हुए हैं और चिन्तन करनेवालेके मनरूपी भौंरेके नित्य संगी हैं, अर्थात् चिन्तन करनेवालोंका मनरूपी भ्रमर सदा उन चरणकमलोंमें बसा रहता है॥ २॥

कुन्दइन्दुदरगौरसुन्दरं अम्बिकापतिमभीष्टसिद्धिदम्।
कारुणीककलकञ्जलोचनं नौमि शङ्करमनङ्गमोचनम्॥ ३॥

कुन्दके फूल, चन्द्रमा और शङ्खके समान सुन्दर गौरवर्ण, जगज्जननी श्रीपार्वतीजीके पति, वाञ्छित फलके देनेवाले, [दुःखियोंपर सदा] दया करनेवाले, सुन्दर कमलके

समान नेत्रवाले, कामदेवसे छुड़ानेवाले, [कल्याणकारी] श्रीशङ्करजीको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ३॥

दो०—रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुर लोग।
जहँ तहँ सोचहिं नारि नर कृस तन राम बियोग॥

[श्रीरामजीके लौटनेकी] अवधिका एक ही दिन बाकी रह गया, अतएव नगरके लोग बहुत आतुर (अधीर) हो रहे हैं। रामके वियोगमें दुबले हुए स्त्री-पुरुष जहाँ-तहाँ सोच (विचार) कर रहे हैं [कि क्या बात है, श्रीरामजी क्यों नहीं आये]।

सगुन होहिं सुंदर सकल मन प्रसन्न सब केर।
प्रभु आगवन जनाव जनु नगर रम्य चहुँ फेर॥

इतनेमें ही सब सुन्दर शकुन होने लगे और सबके मन प्रसन्न हो गये। नगर भी चारों ओरसे रमणीक हो गया। मानो ये सब-के-सब चिह्न प्रभुके [शुभ] आगमनको जना रहे हैं।

कौसल्यादि मातु सब मन अनंद अस होइ।
आयउ प्रभु श्री अनुज जुत कहन चहत अब कोइ॥

कौसल्या आदि सब माताओंके मनमें ऐसा आनन्द हो रहा है जैसे अभी कोई कहना ही चाहता है कि सीताजी और लक्ष्मणजीसहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजी आ गये।

भरत नयन भुज दच्छिन फरकत बारहिं बार।
जानि सगुन मन हरष अति लागे करन बिचार॥

भरतजीकी दाहिनी आँख और दाहिनी भुजा बार-बार फड़क रही है। इसे शुभ शकुन जानकर उनके मनमें अत्यन्त हर्ष हुआ और वे विचार करने लगे—

चौ०—रहेउ एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भयउ अपारा॥
कारन कवन नाथ नहिं आयउ। जानि कुटिल किधौं मोहि बिसरायउ॥ १॥

प्राणोंकी आधाररूप अवधिका एक ही दिन शेष रह गया। यह सोचते ही भरतजीके मनमें अपार दुःख हुआ। क्या कारण हुआ कि नाथ नहीं आये ? प्रभुने कुटिल जानकर मुझे कहीं भुला तो नहीं दिया ?॥ १॥

अहह धन्य लछिमन बड़भागी। राम पदारबिंदु अनुरागी॥
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा। ताते नाथ संग नहिं लीन्हा॥ २॥

अहा हा! लक्ष्मण बड़े धन्य एवं बड़भागी हैं; जो श्रीरामचन्द्रजीके चरणारविन्दके प्रेमी हैं (अर्थात् उनसे अलग नहीं हुए)। मुझे तो प्रभुने कपटी और कुटिल पहचान लिया, इसीसे नाथने मुझे साथ नहीं लिया!॥ २॥

जौं करनी समुझै प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कलप सत कोरी॥
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीनबंधु अति मृदुल सुभाऊ॥ ३॥

[बात भी ठीक ही है, क्योंकि] यदि प्रभु मेरी करनीपर ध्यान दें, तो सौ करोड़ (असंख्य) कल्पोंतक भी मेरा निस्तार (छुटकारा) नहीं हो सकता। [परन्तु आशा इतनी

ही है कि] प्रभु सेवकका अवगुण कभी नहीं मानते। वे दीनबन्धु हैं और अत्यन्त ही कोमल स्वभावके हैं॥ ३॥

मोरे जियँ भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं राम सगुन सुभ होई॥
बीतें अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना॥ ४॥

अतएव मेरे हृदयमें ऐसा पक्का भरोसा है कि श्रीरामजी अवश्य मिलेंगे, [क्योंकि] मुझे शकुन बड़े शुभ हो रहे हैं। किन्तु अवधि बीत जानेपर यदि मेरे प्राण रह गये तो जगत्‌में मेरे समान नीच कौन होगा?॥ ४॥

दो०—राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत।
बिप्र रूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत॥ १ (क)॥

श्रीरामजीके विरह-समुद्रमें भरतजीका मन डूब रहा था, उसी समय पवनपुत्र हनुमान्‌जी ब्राह्मणका रूप धरकर इस प्रकार आ गये, मानो [उन्हें डूबनेसे बचानेके लिये] नाव आ गयी हो॥ १ (क)॥

बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात।
राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात॥ १ (ख)॥

हनुमान्‌जीने दुर्बलशरीर भरतजीको जटाओंका मुकुट बनाये, राम! राम! रघुपति! जपते और कमलके समान नेत्रोंसे [प्रेमाश्रुओंका] जल बहाते कुशके आसनपर बैठे देखा॥ १ (ख)॥

चौ०—देखत हनूमान अति हरषेउ। पुलक गात लोचन जल बरषेउ॥
मन महँ बहुत भाँति सुख मानी। बोलेउ श्रवन सुधा सम बानी॥ १॥

उन्हें देखते ही हनुमान्‌जी अत्यन्त हर्षित हुए। उनका शरीर पुलकित हो गया, नेत्रोंसे [प्रेमाश्रुओंका] जल बरसने लगा। मनमें बहुत प्रकारसे सुख मानकर वे कानोंके लिये अमृतके समान वाणी बोले—॥ १॥

जासु बिरहँ सोचहु दिन राती। रटहु निरंतर गुन गन पाँती॥
रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता। आयउ कुसल देव मुनि त्राता॥ २॥

जिनके विरहमें आप दिन-रात सोच करते (घुलते) रहते हैं और जिनके गुणसमूहोंकी पंक्तियोंको आप निरन्तर रटते रहते हैं, वे ही रघुकुलके तिलक, सज्जनोंको सुख देनेवाले और देवताओं तथा मुनियोंके रक्षक श्रीरामजी सकुशल आ गये॥ २॥

रिपु रन जीति सुजस सुर गावत। सीता सहित अनुज प्रभु आवत॥
सुनत बचन बिसरे सब दूखा। तृषावंत जिमि पाइ पियूषा॥ ३॥

शत्रुको रणमें जीतकर सीताजी और लक्ष्मणजीसहित प्रभु आ रहे हैं, देवता उनका सुन्दर यश गा रहे हैं। ये वचन सुनते ही [भरतजीको] सारे दुःख भूल गये। जैसे प्यासा आदमी अमृत पाकर प्यासके दुःखको भूल जाय॥ ३॥

को तुम्ह तात कहाँ ते आए। मोहि परम प्रिय बचन सुनाए॥
मारुत सुत मैं कपि हनुमाना। नामु मोर सुनु कृपानिधाना॥ ४॥

[भरतजीने पूछा—] हे तात! तुम कौन हो? और कहाँसे आये हो? [जो] तुमने

मुझको [ये] परम प्रिय (अत्यन्त आनन्द देनेवाले) वचन सुनाये। [हनुमान्‌जीने कहा—] हे कृपानिधान! सुनिये, मैं पवनका पुत्र और जातिका वानर हूँ; मेरा नाम हनुमान् है॥ ४॥

दीनबंधु रघुपति कर किंकर। सुनत भरत भेंटेउ उठि सादर॥
मिलत प्रेम नहिं हृदयँ समाता। नयन स्रवत जल पुलकित गाता॥५॥

मैं दीनोंके बन्धु श्रीरघुनाथजीका दास हूँ। यह सुनते ही भरतजी उठकर आदरपूर्वक हनुमान्‌जीसे गले लगकर मिले। मिलते समय प्रेम हृदयमें नहीं समाता। नेत्रोंसे [आनन्द और प्रेमके आँसुओंका] जल बहने लगा और शरीर पुलकित हो गया॥ ५॥

कपि तव दरस सकल दुख बीते। मिले आजु मोहि राम पिरीते॥
बार बार बूझी कुसलाता। तो कहुँ देउँ काह सुनु भ्राता॥६॥

[भरतजीने कहा—] हे हनुमान्! तुम्हारे दर्शनसे मेरे समस्त दुःख समाप्त हो गये (दुःखोंका अन्त हो गया)। [तुम्हारे रूपमें] आज मुझे प्यारे रामजी ही मिल गये। भरतजीने बार-बार कुशल पूछी [और कहा—] हे भाई! सुनो, [इस शुभ संवादके बदलेमें] तुम्हें क्या दूँ॥ ६॥

एहि संदेस सरिस जग माहीं। करि बिचार देखेउँ कछु नाहीं॥
नाहिन तात उरिन मैं तोही। अब प्रभु चरित सुनावहु मोही॥७॥

इस सन्देशके समान (इसके बदलेमें देने लायक पदार्थ) जगत्‌में कुछ भी नहीं है, मैंने यह विचारकर देख लिया है। [इसलिये] हे तात! मैं तुमसे किसी प्रकार भी उऋण नहीं हो सकता। अब मुझे प्रभुका चरित्र (हाल) सुनाओ॥ ७॥

तब हनुमंत नाइ पद माथा। कहे सकल रघुपति गुन गाथा॥
कहु कपि कबहुँ कृपाल गोसाईं। सुमिरहिं मोहि दास की नाईं॥८॥

तब हनुमान्‌जीने भरतजीके चरणोंमें मस्तक नवाकर श्रीरघुनाथजीकी सारी गुण-गाथा कही। [भरतजीने पूछा—] हे हनुमान्! कहो, कृपालु स्वामी श्रीरामचन्द्रजी कभी मुझे अपने दासकी तरह याद भी करते हैं?॥ ८॥

छं०—निज दास ज्यों रघुबंसभूषन कबहुँ मम सुमिरन कर्‌यो।
सुनि भरत बचन बिनीत अति कपि पुलकि तन चरनन्हि पर्‌यो॥
रघुबीर निज मुख जासु गुन गन कहत अग जग नाथ जो।
काहे न होइ बिनीत परम पुनीत सदगुन सिंधु सो॥

रघुवंशके भूषण श्रीरामजी क्या कभी अपने दासकी भाँति मेरा स्मरण करते रहे हैं? भरतजीके अत्यन्त नम्र वचन सुनकर हनुमान्‌जी पुलकितशरीर होकर उनके चरणोंपर गिर पड़े [और मनमें विचारने लगे कि] जो चराचरके स्वामी हैं, वे श्रीरघुवीर अपने श्रीमुखसे जिनके गुणसमूहोंका वर्णन करते हैं, वे भरतजी ऐसे विनम्र, परम पवित्र और सद्‌गुणोंके समुद्र क्यों न हों?

दो०—राम प्रान प्रिय नाथ तुम्ह सत्य बचन मम तात।
पुनि पुनि मिलत भरत सुनि हरष न हृदयँ समात॥ २ (क)॥

[हनुमान्‌जीने कहा—] हे नाथ! आप श्रीरामजीको प्राणोंके समान प्रिय हैं, हे तात! मेरा वचन सत्य है। यह सुनकर भरतजी बार-बार मिलते हैं, हृदयमें हर्ष समाता नहीं है॥ २ (क)॥

सो०—भरत चरन सिरु नाइ तुरित गयउ कपि राम पहिं।
कही कुसल सब जाइ हरषि चलेउ प्रभु जान चढ़ि॥ २ (ख)॥

फिर भरतजीके चरणोंमें सिर नवाकर हनुमान्‌जी तुरन्त ही श्रीरामजीके पास [लौट] गये और जाकर उन्होंने सब कुशल कही। तब प्रभु हर्षित होकर विमानपर चढ़कर चले॥ २ (ख)॥

चौ०—हरषि भरत कोसलपुर आए। समाचार सब गुरहि सुनाए॥
पुनि मंदिर महँ बात जनाई। आवत नगर कुसल रघुराई॥ १॥

इधर भरतजी भी हर्षित होकर अयोध्यापुरीमें आये और उन्होंने गुरुजीको सब समाचार सुनाया। फिर राजमहलमें खबर जनायी कि श्रीरघुनाथजी कुशलपूर्वक नगरको आ रहे हैं॥ १॥

सुनत सकल जननीं उठि धाईं। कहि प्रभु कुसल भरत समुझाईं॥
समाचार पुरबासिन्ह पाए। नर अरु नारि हरषि सब धाए॥ २॥

खबर सुनते ही सब माताएँ उठ दौड़ीं। भरतजीने प्रभुकी कुशल कहकर सबको समझाया। नगरनिवासियोंने यह समाचार पाया, तो स्त्री-पुरुष सभी हर्षित होकर दौड़े॥ २॥

दधि दुर्बा रोचन फल फूला। नव तुलसी दल मंगल मूला॥
भरि भरि हेम थार भामिनी। गावत चलिं सिंधुरगामिनी॥ ३॥

[श्रीरामजीके स्वागतके लिये] दही, दूब, गोरोचन, फल, फूल और मङ्गलके मूल नवीन तुलसीदल आदि वस्तुएँ सोनेके थालोंमें भर-भरकर हथिनीकी-सी चालवाली सौभाग्यवती स्त्रियाँ [उन्हें लेकर] गाती हुई चलीं॥ ३॥

जे जैसेहिं तैसेहिं उठि धावहिं। बाल बृद्ध कहँ संग न लावहिं॥
एक एकन्ह कहँ बूझहिं भाई। तुम्ह देखे दयाल रघुराई॥ ४॥

जो जैसे हैं (जहाँ जिस दशामें हैं) वे वैसे ही (वहींसे उसी दशामें) उठ दौड़ते हैं। [देर हो जानेके डरसे] बालकों और बूढ़ोंको कोई साथ नहीं लाते। एक-दूसरेसे पूछते हैं—भाई! तुमने दयालु श्रीरघुनाथजीको देखा है?॥ ४॥

अवधपुरी प्रभु आवत जानी। भई सकल सोभा कै खानी॥
बहइ सुहावन त्रिबिध समीरा। भइ सरजू अति निर्मल नीरा॥ ५॥

प्रभुको आते जानकर अवधपुरी सम्पूर्ण शोभाओंकी खान हो गयी। तीनों प्रकारकी सुन्दर वायु बहने लगी। सरयूजी अति निर्मल जलवाली हो गयीं (अर्थात् सरयूजीका जल अत्यन्त निर्मल हो गया)॥ ५॥

दो०—हरषित गुर परिजन अनुज भूसुर बृंद समेत।
चले भरत मन प्रेम अति सन्मुख कृपानिकेत॥ ३ (क)॥

गुरु वसिष्ठजी, कुटुम्बी, छोटे भाई शत्रुघ्न तथा ब्राह्मणोंके समूहके साथ हर्षित

होकर भरतजी अत्यन्त प्रेमपूर्ण मनसे कृपाधाम श्रीरामजीके सामने (अर्थात् उनकी अगवानीके लिये) चले॥ ३ (क)॥

बहुतक चढ़ीं अटारिन्ह निरखहिं गगन बिमान।
देखि मधुर सुर हरषित करहिं सुमंगल गान॥ ३ (ख)॥

बहुत-सी स्त्रियाँ अटारियोंपर चढ़ी आकाशमें विमान देख रही हैं और उसे देखकर हर्षित होकर मीठे स्वरसे सुन्दर मङ्गलगीत गा रही हैं॥ ३ (ख)॥

राका ससि रघुपति पुर सिंधु देखि हरषान।
बढ़्यो कोलाहल करत जनु नारि तरंग समान॥ ३ (ग)॥

श्रीरघुनाथजी पूर्णिमाके चन्द्रमा हैं तथा अवधपुर समुद्र है, जो उस पूर्णचन्द्रको देखकर हर्षित हो रहा है और शोर करता हुआ बढ़ रहा है। [इधर-उधर दौड़ती हुई] स्त्रियाँ उसकी तरंगोंके समान लगती हैं॥ ३ (ग)॥

चौ०—इहाँ भानुकुल कमल दिवाकर। कपिन्ह देखावत नगर मनोहर॥
सुनु कपीस अंगद लंकेसा। पावन पुरी रुचिर यह देसा॥ १॥

यहाँ (विमानपरसे) सूर्यकुलरूपी कमलके प्रफुल्लित करनेवाले सूर्य श्रीरामजी वानरोंको मनोहर नगर दिखला रहे हैं। [वे कहते हैं—] हे सुग्रीव! हे अङ्गद! हे लङ्कापति विभीषण! सुनो। यह पुरी पवित्र है और यह देश सुन्दर है॥ १॥

जद्यपि सब बैकुंठ बखाना। बेद पुरान बिदित जगु जाना॥
अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ॥ २॥

यद्यपि सबने वैकुण्ठकी बड़ाई की है—यह वेद-पुराणोंमें प्रसिद्ध है और जगत् जानता है—परन्तु अवधपुरीके समान मुझे वह भी प्रिय नहीं है। यह बात (भेद) कोई-कोई (विरले ही) जानते हैं॥ २॥

जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिसि बह सरजू पावनि॥
जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहिं बासा॥ ३॥

यह सुहावनी पुरी मेरी जन्मभूमि है। इसके उत्तर दिशामें [जीवोंको] पवित्र करनेवाली सरयू नदी बहती है, जिसमें स्नान करनेसे मनुष्य बिना ही परिश्रम मेरे समीप निवास (सामीप्य मुक्ति) पा जाते हैं॥ ३॥

अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी। मम धामदा पुरी सुख रासी॥
हरषे सब कपि सुनि प्रभु बानी। धन्य अवध जो राम बखानी॥ ४॥

यहाँके निवासी मुझे बहुत ही प्रिय हैं। यह पुरी सुखकी राशि और मेरे परमधामको देनेवाली है। प्रभुकी वाणी सुनकर सब वानर हर्षित हुए [और कहने लगे कि] जिस अवधकी स्वयं श्रीरामजीने बड़ाई की, वह [अवश्य ही] धन्य है॥ ४॥

दो०—आवत देखि लोग सब कृपासिंधु भगवान।
नगर निकट प्रभु प्रेरेउ उतरेउ भूमि बिमान॥ ४ (क)॥

कृपासागर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने सब लोगोंको आते देखा, तो प्रभुने विमानको नगरके समीप उतरनेकी प्रेरणा की। तब वह पृथ्वीपर उतरा॥ ४ (क)॥

उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि तुम्ह कुबेर पहिं जाहु।
प्रेरित राम चलेउ सो हरषु बिरहु अति ताहु॥ ४ (ख)॥

विमानसे उतरकर प्रभुने पुष्पकविमानसे कहा कि तुम अब कुबेरके पास जाओ। श्रीरामजीकी प्रेरणासे वह चला; उसे [अपने स्वामीके पास जानेका] हर्ष है और प्रभु श्रीरामचन्द्रजीसे अलग होनेका अत्यन्त दुःख भी॥ ४ (ख)॥

चौ०—आए भरत संग सब लोगा। कृस तन श्रीरघुबीर बियोगा॥
बामदेव बसिष्ट मुनिनायक। देखे प्रभु महि धरि धनु सायक॥ १॥

भरतजीके साथ सब लोग आये। श्रीरघुवीरके वियोगसे सबके शरीर दुबले हो रहे हैं। प्रभुने वामदेव, वसिष्ठ आदि मुनिश्रेष्ठोंको देखा तो उन्होंने धनुष बाण पृथ्वीपर रखकर— ॥ १॥

धाइ धरे गुर चरन सरोरुह। अनुज सहित अति पुलक तनोरुह॥
भेंटि कुसल बूझी मुनिराया। हमरें कुसल तुम्हारिहिं दाया॥ २॥

छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित दौड़कर गुरुजीके चरणकमल पकड़ लिये; उनके रोम-रोम अत्यन्त पुलकित हो रहे हैं। मुनिराज वसिष्ठजीने [उठाकर] उन्हें गले लगाकर कुशल पूछी। [प्रभुने कहा—] आपहीकी दयामें हमारी कुशल है॥ २॥

सकल द्विजन्ह मिलि नायउ माथा। धर्म धुरंधर रघुकुलनाथा॥
गहे भरत पुनि प्रभु पद पंकज। नमत जिन्हहि सुर मुनि संकर अज॥ ३॥

धर्मकी धुरी धारण करनेवाले रघुकुलके स्वामी श्रीरामजीने सब ब्राह्मणोंसे मिलकर उन्हें मस्तक नवाया। फिर भरतजीने प्रभुके वे चरणकमल पकड़े जिन्हें देवता, मुनि, शङ्करजी और ब्रह्माजी [भी] नमस्कार करते हैं॥ ३॥

परे भूमि नहिं उठत उठाए। बर करि कृपासिंधु उर लाए॥
स्यामल गात रोम भए ठाढ़े। नव राजीव नयन जल बाढ़े॥ ४॥

भरतजी पृथ्वीपर पड़े हैं, उठाये उठते नहीं। तब कृपासिंधु श्रीरामजीने उन्हें जबर्दस्ती उठाकर हृदयसे लगा लिया। [उनके] साँवले शरीरपर रोएँ खड़े हो गये। नवीन कमलके समान नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुओंके] जलकी बाढ़ आ गयी॥ ४॥

छं०—राजीव लोचन स्रवत जल तन ललित पुलकावलि बनी।
अति प्रेम हृदयँ लगाइ अनुजहि मिले प्रभु त्रिभुवन धनी॥
प्रभु मिलत अनुजहि सोह मो पहिं जाति नहिं उपमा कही।
जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि मिले बर सुषमा लही॥ १॥

कमलके समान नेत्रोंसे जल बह रहा है। सुन्दर शरीरमें पुलकावली [अत्यन्त] शोभा दे रही है। त्रिलोकीके स्वामी प्रभु श्रीरामजी छोटे भाई भरतजीको अत्यन्त प्रेमसे हृदयसे लगाकर मिले। भाईसे मिलते समय प्रभु जैसे शोभित हो रहे हैं उसकी उपमा मुझसे कही नहीं जाती। मानो प्रेम और शृङ्गार शरीर धारण करके मिले और श्रेष्ठ शोभाको प्राप्त हुए॥ १॥

बूझत कृपानिधि कुसल भरतहि बचन बेगि न आवई।
सुनु सिवा सो सुख बचन मन ते भिन्न जान जो पावई॥
अब कुसल कौसलनाथ आरत जानि जन दरसन दियो।
बूड़त बिरह बारीस कृपानिधान मोहि कर गहि लियो॥ २॥

कृपानिधान श्रीरामजी भरतजीसे कुशल पूछते हैं; परन्तु आनन्दवश भरतजीके मुखसे वचन शीघ्र नहीं निकलते। [शिवजीने कहा—] हे पार्वती! सुनो, वह सुख (जो उस समय भरतजीको मिल रहा था) वचन और मनसे परे है; उसे वही जानता है जो उसे पाता है। [भरतजीने कहा—] हे कोसलनाथ! आपने आर्त्त (दुःखी) जानकर दासको दर्शन दिये, इससे अब कुशल है। विरहसमुद्रमें डूबते हुए मुझको कृपानिधानने हाथ पकड़कर बचा लिया!॥ २॥

दो०—पुनि प्रभु हरषि सत्रुहन भेंटे हृदयँ लगाइ।
लछिमन भरत मिले तब परम प्रेम दोउ भाइ॥ ५॥

फिर प्रभु हर्षित होकर शत्रुघ्नजीको हृदयसे लगाकर उनसे मिले। तब लक्ष्मणजी और भरतजी दोनों भाई परम प्रेमसे मिले॥ ५॥

चौ०—भरतानुज लछिमन पुनि भेंटे। दुसह बिरह संभव दुख मेटे॥
सीता चरन भरत सिरु नावा। अनुज समेत परम सुख पावा॥ १॥

फिर लक्ष्मणजी शत्रुघ्नजीसे गले लगकर मिले और इस प्रकार विरहसे उत्पन्न दुःसह दुःखका नाश किया। फिर भाई शत्रुघ्नजीसहित भरतजीने सीताजीके चरणोंमें सिर नवाया और परम सुख प्राप्त किया॥ १॥

प्रभु बिलोकि हरषे पुरबासी। जनित बियोग बिपति सब नासी॥
प्रेमातुर सब लोग निहारी। कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी॥ २॥

प्रभुको देखकर अयोध्यावासी सब हर्षित हुए। वियोगसे उत्पन्न सब दुःख नष्ट हो गये। सब लोगोंको प्रेमविह्वल [और मिलनेके लिये अत्यन्त आतुर] देखकर खरके शत्रु कृपालु श्रीरामजीने एक चमत्कार किया॥ २॥

अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथा जोग मिले सबहि कृपाला॥
कृपादृष्टि रघुबीर बिलोकी। किए सकल नर नारि बिसोकी॥ ३॥

उसी समय कृपालु श्रीरामजी असंख्य रूपोंमें प्रकट हो गये और सबसे [एक ही साथ] यथायोग्य मिले। श्रीरघुवीरने कृपाकी दृष्टिसे देखकर सब नर-नारियोंको शोकसे रहित कर दिया॥ ३॥

छन महिं सबहि मिले भगवाना। उमा मरम यह काहुँ न जाना॥
एहि बिधि सबहि सुखी करि रामा। आगें चले सील गुन धामा॥ ४॥

भगवान् क्षणमात्रमें सबसे मिल लिये। हे उमा! यह रहस्य किसीने नहीं जाना। इस प्रकार शील और गुणोंके धाम श्रीरामजी सबको सुखी करके आगे बढ़े॥ ४॥

कौसल्यादि मातु सब धाई। निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई॥ ५॥

कौसल्या आदि माताएँ ऐसे दौड़ीं मानो नयी ब्यायी हुई गौएँ अपने बछड़ोंको देखकर दौड़ी हों॥ ५॥

छं०—जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृहँ चरन बन परबस गईं।
दिन अंत पुर रुख स्त्रवत थन हुंकार करि धावत भईं॥
अति प्रेम प्रभु सब मातु भेटीं बचन मृदु बहुबिधि कहे।
गइ बिषम बिपति बियोगभव तिन्ह हरष सुख अगनित लहे॥

मानो नयी ब्यायी हुई गौएँ अपने छोटे बछड़ोंको घरपर छोड़ परवश होकर वनमें चरने गयी हों और दिनका अन्त होनेपर [बछड़ोंसे मिलनेके लिये] हुंकार करके थनसे दूध गिराती हुई नगरकी ओर दौड़ी हों। प्रभुने अत्यन्त प्रेमसे सब माताओंसे मिलकर उनसे बहुत प्रकारके कोमल वचन कहे। वियोगसे उत्पन्न भयानक विपत्ति दूर हो गयी और सबने [भगवान्‌से मिलकर और उनके वचन सुनकर] अगणित सुख और हर्ष प्राप्त किये।

दो०—भेटेउ तनय सुमित्राँ राम चरन रति जानि।
रामहि मिलत कैकई हृदयँ बहुत सकुचानि॥६ (क)॥

सुमित्राजी अपने पुत्र लक्ष्मणजीकी श्रीरामजीके चरणोंमें प्रीति जानकर उनसे मिलीं। श्रीरामजीसे मिलते समय कैकेयीजी हृदयमें बहुत सकुचायीं॥ ६ (क)॥

लछिमन सब मातन्ह मिलि हरषे आसिष पाइ।
कैकइ कहँ पुनि पुनि मिले मन कर छोभु न जाइ॥६ (ख)॥

लक्ष्मणजी भी सब माताओंसे मिलकर और आशीर्वाद पाकर हर्षित हुए। वे कैकेयीजीसे बार-बार मिले, परन्तु उनके मनका क्षोभ (रोष) नहीं जाता॥ ६ (ख)॥

चौ०—सासुन्ह सबनि मिली बैदेही। चरनन्हि लागि हरषु अति तेही॥
देहिं असीस बूझि कुसलाता। होइ अचल तुम्हार अहिवाता॥१॥

जानकीजी सब सासुओंसे मिलीं और उनके चरणों लगकर उन्हें अत्यन्त हर्ष हुआ। सासुएँ कुशल पूछकर आशिष दे रही हैं कि तुम्हारा सुहाग अचल हो॥ १॥

सब रघुपति मुख कमल बिलोकहिं। मंगल जानि नयन जल रोकहिं॥
कनक थार आरती उतारहिं। बार बार प्रभु गात निहारहिं॥२॥

सब माताएँ श्रीरघुनाथजीका कमल-सा मुखड़ा देख रही हैं। [नेत्रोंसे प्रेमके आँसू उमड़े आते हैं, परन्तु] मङ्गलका समय जानकर वे आँसुओंके जलको नेत्रोंमें ही रोक रखती हैं। सोनेके थालसे आरती उतारती हैं और बार-बार प्रभुके श्रीअङ्गोंकी ओर देखती हैं॥ २॥

नाना भाँति निछावरि करहीं। परमानंद हरष उर भरहीं॥
कौसल्या पुनि पुनि रघुबीरहि। चितवति कृपासिंधु रनधीरहि॥३॥

अनेकों प्रकारसे निछावरें करती हैं और हृदयमें परमानन्द तथा हर्ष भर रही हैं। कौसल्याजी बार-बार कृपाके समुद्र और रणधीर श्रीरघुवीरको देख रही हैं॥ ३॥

हृदयँ बिचारति बारहिं बारा। कवन भाँति लंकापति मारा॥
अति सुकुमार जुगल मेरे बारे। निसिचर सुभट महाबल भारे॥४॥

वे बार-बार हृदयमें विचारती हैं कि इन्होंने लङ्कापति रावणको कैसे मारा? मेरे ये

दोनों बच्चे बड़े ही सुकुमार हैं और राक्षस तो बड़े भारी योद्धा और महान् बली थे॥ ४॥

दो०—लछिमन अरु सीता सहित प्रभुहि बिलोकति मातु।
परमानंद मगन मन पुनि पुनि पुलकित गातु॥ ७॥

लक्ष्मणजी और सीताजीसहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको माता देख रही हैं। उनका मन परमानन्दमें मग्न है और शरीर बार-बार पुलकित हो रहा है॥ ७॥

चौ०—लंकापति कपीस नल नीला। जामवंत अंगद सुभसीला॥
हनुमदादि सब बानर बीरा। धरे मनोहर मनुज सरीरा॥ १॥

लङ्कापति विभीषण, वानरराज सुग्रीव, नल, नील, जाम्बवान् और अङ्गद तथा हनुमान्‌जी आदि सभी उत्तम स्वभाववाले वीर वानरोंने मनुष्योंके मनोहर शरीर धारण कर लिये॥ १॥

भरत सनेह सील ब्रत नेमा। सादर सब बरनहिं अति प्रेमा॥
देखि नगरबासिन्ह कै रीती। सकल सराहहिं प्रभु पद प्रीती॥ २॥

वे सब भरतजीके प्रेम, सुन्दर स्वभाव, [त्यागके] व्रत और नियमोंकी अत्यन्त प्रेमसे आदरपूर्वक बड़ाई कर रहे हैं। और नगरनिवासियोंकी [प्रेम, शील और विनयसे पूर्ण] रीति देखकर वे सब प्रभुके चरणोंमें उनके प्रेमकी सराहना कर रहे हैं॥ २॥

पुनि रघुपति सब सखा बोलाए। मुनि पद लागहु सकल सिखाए॥
गुर बसिष्ट कुलपूज्य हमारे। इन्ह की कृपाँ दनुज रन मारे॥ ३॥

फिर श्रीरघुनाथजीने सब सखाओंको बुलाया और सबको सिखाया कि मुनिके चरणोंमें लगो। ये गुरु वसिष्ठजी हमारे कुलभरके पूज्य हैं। इन्हींकी कृपासे रणमें राक्षस मारे गये हैं॥ ३॥

ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे॥
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे। भरतहु ते मोहि अधिक पिआरे॥ ४॥

[फिर गुरुजीसे कहा—] हे मुनि! सुनिये। ये सब मेरे सखा हैं। ये संग्रामरूपी समुद्रमें मेरे लिये बेड़े (जहाज) के समान हुए। मेरे हितके लिये इन्होंने अपने जन्मतक हार दिये (अपने प्राणोंतकको होम दिया)। ये मुझे भरतसे भी अधिक प्रिय हैं॥ ४॥

सुनि प्रभु बचन मगन सब भए। निमिष निमिष उपजत सुख नए॥ ५॥

प्रभुके वचन सुनकर सब प्रेम और आनन्दमें मग्न हो गये। इस प्रकार पल-पलमें उन्हें नये-नये सुख उत्पन्न हो रहे हैं॥ ५॥

दो०—कौसल्या के चरनन्हि पुनि तिन्ह नायउ माथ।
आसिष दीन्हे हरषि तुम्ह प्रिय मम जिमि रघुनाथ॥ ८ (क)॥

फिर उन लोगोंने कौसल्याजीके चरणोंमें मस्तक नवाये। कौसल्याजीने हर्षित होकर आशिषें दीं [और कहा—] तुम मुझे रघुनाथके समान प्यारे हो॥ ८ (क)॥

सुमन बृष्टि नभ संकुल भवन चले सुखकंद।
चढ़ी अटारिन्ह देखहिं नगर नारि नर बृंद॥ ८ (ख)॥

आनन्दकन्द श्रीरामजी अपने महलको चले, आकाश फूलोंकी वृष्टिसे छा गया। नगरके स्त्री-पुरुषोंके समूह अटारियोंपर चढ़कर उनके दर्शन कर रहे हैं॥ ८ (ख)॥

चौ०—कंचन कलस बिचित्र सँवारे। सबहिं धरे सजि निज निज द्वारे॥
बंदनवार पताका केतू। सबन्हि बनाए मंगल हेतू॥ १॥

सोनेके कलशोंको विचित्र रीतिसे [मणि-रत्नादिसे] अलंकृत कर और सजाकर सब लोगोंने अपने-अपने दरवाजोंपर रख लिया। सब लोगोंने मङ्गलके लिये बंदनवार, ध्वजा और पताकाएँ लगायीं॥ १॥

बीथीं सकल सुगंध सिंचाईं। गजमनि रचि बहु चौक पुराईं॥
नाना भाँति सुमंगल साजे। हरषि नगर निसान बहु बाजे॥ २॥

सारी गलियाँ सुगन्धित द्रवोंसे सिंचायी गयीं। गजमुक्ताओंसे रचकर बहुत-सी चौकें पुरायी गयीं। अनेकों प्रकारके सुन्दर मङ्गल-साज सजाये गये और हर्षपूर्वक नगरमें बहुत-से डंके बजने लगे॥ २॥

जहँ तहँ नारि निछावरि करहीं। देहिं असीस हरष उर भरहीं॥
कंचन थार आरतीं नाना। जुबतीं सजें करहिं सुभ गाना॥ ३॥

स्त्रियाँ जहाँ-तहाँ निछावर कर रही हैं और हृदयमें हर्षित होकर आशीर्वाद देती हैं। बहुत-सी युवती [सौभाग्यवती] स्त्रियाँ सोनेके थालोंमें अनेकों प्रकारकी आरती सजकर मङ्गलगान कर रही हैं॥ ३॥

करहिं आरती आरतिहर कें। रघुकुल कमल बिपिन दिनकर कें॥
पुर सोभा संपति कल्याना। निगम सेष सारदा बखाना॥ ४॥

वे आर्तिहर (दुःखोंको हरनेवाले) और सूर्यकुलरूपी कमलवनके प्रफुल्लित करनेवाले सूर्य श्रीरामजीकी आरती कर रही हैं। नगरकी शोभा, सम्पत्ति और कल्याणका वेद, शेषजी और सरस्वतीजी वर्णन करते हैं—॥ ४॥

तेउ यह चरित देखि ठगि रहहीं। उमा तासु गुन नर किमि कहहीं॥ ५॥

परन्तु वे भी यह चरित देखकर ठगे-से रह जाते हैं (स्तम्भित हो रहते हैं)। [शिवजी कहते हैं—] हे उमा! तब भला मनुष्य उनके गुणोंको कैसे कह सकते हैं?॥ ५॥

दो०—नारि कुमुदिनीं अवध सर रघुपति बिरह दिनेस।
अस्त भएँ बिगसत भईं निरखि राम राकेस॥ ९ (क)॥

स्त्रियाँ कुमुदिनी हैं, अयोध्या सरोवर है और श्रीरघुनाथजीका विरह सूर्य है [इस विरह-सूर्यके तापसे वे मुरझा गयी थीं]। अब उस विरहरूपी सूर्यके अस्त होनेपर श्रीरामरूपी पूर्णचन्द्रको निरखकर वे खिल उठीं॥ ९ (क)॥

होहिं सगुन सुभ बिबिधि बिधि बाजहिं गगन निसान।
पुर नर नारि सनाथ करि भवन चले भगवान॥ ९ (ख)॥

अनेक प्रकारके शुभ शकुन हो रहे हैं, आकाशमें नगाड़े बज रहे हैं। नगरके पुरुषों और स्त्रियोंको सनाथ (दर्शनद्वारा कृतार्थ) करके भगवान् श्रीरामचन्द्रजी महलको चले॥ ९ (ख)॥

चौ०—प्रभु जानी कैकई लजानी। प्रथम तासु गृह गए भवानी॥
ताहि प्रबोधि बहुत सुख दीन्हा। पुनि निज भवन गवन हरि कीन्हा॥ १॥

[शिवजी कहते हैं—] हे भवानी! प्रभुने जान लिया कि माता कैकेयी लज्जित हो गयी हैं। [इसलिये] वे पहले उन्हींके महलको गये और उन्हें समझा-बुझाकर बहुत सुख दिया। फिर श्रीहरिने अपने महलको गमन किया॥ १॥

कृपासिंधु जब मंदिर गए। पुर नर नारि सुखी सब भए॥
गुर बसिष्ट द्विज लिए बुलाई। आजु सुघरी सुदिन समुदाई॥ २॥

कृपाके समुद्र श्रीरामजी जब अपने महलको गये, तब नगरके स्त्री-पुरुष सब सुखी हुए। गुरु वसिष्ठजीने ब्राह्मणोंको बुला लिया [और कहा—] आज शुभ घड़ी, सुन्दर दिन आदि सभी शुभ योग हैं॥ २॥

सब द्विज देहु हरषि अनुसासन। रामचंद्र बैठहिं सिंघासन॥
मुनि बसिष्ट के बचन सुहाए। सुनत सकल बिप्रन्ह अति भाए॥ ३॥

आप सब ब्राह्मण हर्षित होकर आज्ञा दीजिये, जिसमें श्रीरामचन्द्रजी सिंहासनपर विराजमान हों। वसिष्ठ मुनिके सुहावने वचन सुनते ही सब ब्राह्मणोंको बहुत ही अच्छे लगे॥ ३॥

कहहिं बचन मृदु बिप्र अनेका। जग अभिराम राम अभिषेका॥
अब मुनिबर बिलंब नहिं कीजै। महाराज कहँ तिलक करीजै॥ ४॥

वे सब अनेकों ब्राह्मण कोमल वचन कहने लगे कि श्रीरामजीका राज्याभिषेक सम्पूर्ण जगत्‌को आनन्द देनेवाला है। हे मुनिश्रेष्ठ! अब विलम्ब न कीजिये और महाराजका तिलक शीघ्र कीजिये॥ ४॥

दो०—तब मुनि कहेउ सुमंत्र सन सुनत चलेउ हरषाइ।
रथ अनेक बहु बाजि गज तुरत सँवारे जाइ॥ १० (क)॥

तब मुनिने सुमन्त्रजीसे कहा, वे सुनते ही हर्षित होकर चले। उन्होंने तुरंत ही जाकर अनेकों रथ, घोड़े और हाथी सजाये; ॥ १० (क)॥

जहँ तहँ धावन पठइ पुनि मंगल द्रब्य मगाइ।
हरष समेत बसिष्ट पद पुनि सिरु नायउ आइ॥ १० (ख)॥

और जहाँ-तहाँ [सूचना देनेवाले] दूतोंको भेजकर माङ्गलिक वस्तुएँ मँगाकर फिर हर्षके साथ आकर वसिष्ठजीके चरणोंमें सिर नवाया॥ १० (ख)॥

चौ०—अवधपुरी अति रुचिर बनाई। देवन्ह सुमन बृष्टि झरि लाई॥
राम कहा सेवकन्ह बुलाई। प्रथम सखन्ह अन्हवावहु जाई॥ १॥

अवधपुरी बहुत ही सुन्दर सजायी गयी। देवताओंने पुष्पोंकी वर्षाकी झड़ी लगा दी। श्रीरामचन्द्रजीने सेवकोंको बुलाकर कहा कि तुमलोग जाकर पहले मेरे सखाओंको स्नान कराओ॥ १॥

सुनत बचन जहँ तहँ जन धाए। सुग्रीवादि तुरत अन्हवाए॥
पुनि करुनानिधि भरतु हँकारे। निज कर राम जटा निरुआरे॥ २॥

भगवान्‌के वचन सुनते ही सेवक जहाँ-तहाँ दौड़े और तुरंत ही उन्होंने सुग्रीवादिको स्नान कराया। फिर करुणानिधान श्रीरामजीने भरतजीको बुलाया और उनकी जटाओंको अपने हाथोंसे सुलझाया॥ २॥

अन्हवाए प्रभु तीनिउ भाई। भगत बछल कृपाल रघुराई॥
भरत भाग्य प्रभु कोमलताई। सेष कोटि सत सकहिं न गाई॥ ३॥

तदनन्तर भक्तवत्सल कृपालु प्रभु श्रीरघुनाथजीने तीनों भाइयोंको स्नान कराया। भरतजीका भाग्य और प्रभुकी कोमलताका वर्णन अरबों शेषजी भी नहीं कर सकते॥ ३॥

पुनि निज जटा राम बिबराए। गुर अनुसासन मागि नहाए॥
करि मज्जन प्रभु भूषन साजे। अंग अनंग देखि सत लाजे॥ ४॥

फिर श्रीरामजीने अपनी जटाएँ खोलीं और गुरुजीकी आज्ञा माँगकर स्नान किया। स्नान करके प्रभुने आभूषण धारण किये। उनके [सुशोभित] अङ्गोंको देखकर सैकड़ों (असंख्य) कामदेव लजा गये॥ ४॥

दो०—सासुन्ह सादर जानकिहि मज्जन तुरत कराइ।
दिब्य बसन बर भूषन अँग अँग सजे बनाइ॥ ११ (क)॥

[इधर] सासुओंने जानकीजीको आदरके साथ तुरंत ही स्नान कराके उनके अङ्ग-अङ्गमें दिव्य वस्त्र और श्रेष्ठ आभूषण भलीभाँति सजा दिये (पहना दिये)॥ ११ (क)॥

राम बाम दिसि सोभति रमा रूप गुन खानि।
देखि मातु सब हरषीं जन्म सुफल निज जानि॥ ११ (ख)॥

श्रीरामके बायीं ओर रूप और गुणोंकी खान रमा (श्रीजानकीजी) शोभित हो रही हैं। उन्हें देखकर सब माताएँ अपना जन्म (जीवन) सफल समझकर हर्षित हुईं॥ ११ (ख)॥

सुनु खगेस तेहि अवसर ब्रह्मा सिव मुनि बृंद।
चढ़ि बिमान आए सब सुर देखन सुखकंद॥ ११ (ग)॥

[काकभुशुण्डिजी कहते हैं—] हे पक्षिराज गरुड़जी! सुनिये; उस समय ब्रह्माजी, शिवजी और मुनियोंके समूह तथा विमानोंपर चढ़कर सब देवता आनन्दकन्द भगवान्‌के दर्शन करनेके लिये आये॥ ११ (ग)॥

चौ०—प्रभु बिलोकि मुनि मन अनुरागा। तुरत दिब्य सिंघासन मागा॥
रबि सम तेज सो बरनि न जाई। बैठे राम द्विजन्ह सिरु नाई॥ १॥

प्रभुको देखकर मुनि वसिष्ठजीके मनमें प्रेम भर आया। उन्होंने तुरंत ही दिव्य सिंहासन मँगवाया, जिसका तेज सूर्यके समान था। उसका सौन्दर्य वर्णन नहीं किया जा सकता। ब्राह्मणोंको सिर नवाकर श्रीरामचन्द्रजी उसपर विराज गये॥ १॥

जनकसुता समेत रघुराई। पेखि प्रहरषे मुनि समुदाई॥
बेद मंत्र तब द्विजन्ह उचारे। नभ सुर मुनि जय जयति पुकारे॥ २॥

श्रीजानकीजीके सहित श्रीरघुनाथजीको देखकर मुनियोंका समुदाय अत्यन्त ही हर्षित हुआ। तब ब्राह्मणोंने वेदमन्त्रोंका उच्चारण किया। आकाशमें देवता और मुनि 'जय हो, जय हो' ऐसी पुकार करने लगे॥ २॥

प्रथम तिलक बसिष्ट मुनि कीन्हा। पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा॥
सुत बिलोकि हरषीं महतारी। बार बार आरती उतारी॥ ३॥

[सबसे] पहले मुनि वसिष्ठजीने तिलक किया। फिर उन्होंने सब ब्राह्मणोंको [तिलक करनेकी] आज्ञा दी। पुत्रको राजसिंहासनपर देखकर माताएँ हर्षित हुईं और उन्होंने बार-बार आरती उतारी॥ ३॥

बिप्रन्ह दान बिबिधि बिधि दीन्हे। जाचक सकल अजाचक कीन्हे॥
सिंघासन पर त्रिभुअन साईं। देखि सुरन्ह दुंदुभीं बजाईं॥ ४॥

उन्होंने ब्राह्मणोंको अनेकों प्रकारके दान दिये और सम्पूर्ण याचकोंको अयाचक बना दिया (मालामाल कर दिया)। त्रिभुवनके स्वामी श्रीरामचन्द्रजीको [अयोध्याके] सिंहासनपर [विराजित] देखकर देवताओंने नगाड़े बजाये॥ ४॥

छं०—नभ दुंदुभीं बाजहिं बिपुल गंधर्ब किंनर गावहीं।
नाचहिं अपछरा बृंद परमानंद सुर मुनि पावहीं॥
भरतादि अनुज बिभीषनांगद हनुमदादि समेत ते।
गहें छत्र चामर ब्यजन धनु असि चर्म सक्ति बिराजते॥ १॥

आकाशमें बहुत-से नगाड़े बज रहे हैं। गन्धर्व और किन्नर गा रहे हैं। अप्सराओंके झुंड-के-झुंड नाच रहे हैं। देवता और मुनि परमानन्द प्राप्त कर रहे हैं। भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नजी, विभीषण, अङ्गद, हनुमान् और सुग्रीव आदिसहित क्रमशः छत्र, चँवर, पंखा, धनुष, तलवार, ढाल और शक्ति लिये हुए सुशोभित हैं॥ १॥

श्री सहित दिनकर बंस भूषन काम बहु छबि सोहई।
नव अंबुधर बर गात अंबर पीत सुर मन मोहई॥
मुकुटांगदादि बिचित्र भूषन अंग अंगन्हि प्रति सजे।
अंभोज नयन बिसाल उर भुज धन्य नर निरखंति जे॥ २॥

श्रीसीताजीसहित सूर्यवंशके विभूषण श्रीरामजीके शरीरमें अनेकों कामदेवोंकी छबि शोभा दे रही है। नवीन जलयुक्त मेघोंके समान सुन्दर श्याम शरीरपर पीताम्बर देवताओंके मनको भी मोहित कर रहा है। मुकुट, बाजूबंद आदि विचित्र आभूषण अङ्ग-अङ्गमें सजे हुए हैं। कमलके समान नेत्र हैं, चौड़ी छाती है और लम्बी भुजाएँ हैं; जो उनके दर्शन करते हैं, वे मनुष्य धन्य हैं॥ २॥

दो०—वह सोभा समाज सुख कहत न बनइ खगेस।
बरनहिं सारद सेष श्रुति सो रस जान महेस॥ १२ (क)॥

हे पक्षिराज गरुड़जी! वह शोभा, वह समाज और वह सुख मुझसे कहते नहीं बनता। सरस्वतीजी, शेषजी और वेद निरन्तर उसका वर्णन करते हैं; और उसका रस (आनन्द) महादेवजी ही जानते हैं॥ १२ (क)॥

भिन्न भिन्न अस्तुति करि गए सुर निज निज धाम।
बंदी बेष बेद तब आए जहँ श्रीराम॥ १२ (ख)॥

सब देवता अलग-अलग स्तुति करके अपने-अपने लोकको चले गये। तब भाटोंका रूप धारण करके चारों वेद वहाँ आये जहाँ श्रीरामजी थे॥ १२ (ख)॥

प्रभु सर्बग्य कीन्ह अति आदर कृपानिधान।
लखेउ न काहूँ मरम कछु लगे करन गुन गान॥ १२ (ग)॥

कृपानिधान सर्वज्ञ प्रभुने [उन्हें पहचानकर] उनका बहुत ही आदर किया। इसका भेद किसीने कुछ भी नहीं जाना। वेद गुणगान करने लगे॥ १२ (ग)॥

छं०—जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने।
दसकंधरादि प्रचंड निसिचर प्रबल खल भुजबल हने॥
अवतार नर संसार भार बिभंजि दारुन दुख दहे।
जय प्रनतपाल दयाल प्रभु संजुक्त सक्ति नमामहे॥ १॥

हे सगुण और निर्गुणरूप! हे अनुपम रूप-लावण्ययुक्त! हे राजाओंके शिरोमणि! आपकी जय हो। आपने रावण आदि प्रचण्ड, प्रबल और दुष्ट निशाचरोंको अपनी भुजाओंके बलसे मार डाला। आपने मनुष्य-अवतार लेकर संसारके भारको नष्ट करके अत्यन्त कठोर दुःखोंको भस्म कर दिया। हे दयालु! हे शरणागतकी रक्षा करनेवाले प्रभो! आपकी जय हो। मैं शक्ति (सीताजी) सहित शक्तिमान् आपको नमस्कार करता हूँ॥ १॥

तव बिषम माया बस सुरासुर नाग नर अग जग हरे।
भव पंथ भ्रमत अमित दिवस निसि काल कर्म गुननि भरे॥
जे नाथ करि करुना बिलोके त्रिबिधि दुख ते निर्बहे।
भव खेद छेदन दच्छ हम कहुँ रच्छ राम नमामहे॥ २॥

हे हरे! आपकी दुस्तर मायाके वशीभूत होनेके कारण देवता, राक्षस, नाग, मनुष्य और चर-अचर सभी काल, कर्म और गुणोंसे भरे हुए (उनके वशीभूत हुए) दिन-रात अनन्त भव (आवागमन)के मार्गमें भटक रहे हैं। हे नाथ! इनमेंसे जिनको आपने कृपा करके (कृपादृष्टिसे) देख लिया, वे [मायाजनित] तीनों प्रकारके दुःखोंसे छूट गये। हे जन्म-मरणके श्रमको काटनेमें कुशल श्रीरामजी! हमारी रक्षा कीजिये। हम आपको नमस्कार करते हैं॥ २॥

जे ग्यान मान बिमत्त तव भव हरनि भक्ति न आदरी।
ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी॥
बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तव जे होइ रहे।
जपि नाम तव बिनु श्रम तरहिं भव नाथ सो समरामहे॥ ३॥

जिन्होंने मिथ्या ज्ञानके अभिमानमें विशेषरूपसे मतवाले होकर जन्म-मृत्यु [के भय] को हरनेवाली आपकी भक्तिका आदर नहीं किया, हे हरि! उन्हें देवदुर्लभ (देवताओंको भी बड़ी कठिनतासे प्राप्त होनेवाले, ब्रह्मा आदिके) पदको पाकर भी हम उस पदसे नीचे गिरते देखते हैं। [परन्तु] जो सब आशाओंको छोड़कर आपपर विश्वास

करके आपके दास हो रहते हैं, वे केवल आपका नाम ही जपकर बिना ही परिश्रम भवसागरसे तर जाते हैं। हे नाथ! ऐसे आपका हम स्मरण करते हैं॥ ३॥

जे चरन सिव अज पूज्य रज सुभ परसि मुनिपतिनी तरी।
नख निर्गता मुनि बंदिता त्रैलोक पावनि सुरसरी॥
ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटक किन लहे।
पद कंज द्वंद मुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे॥ ४॥

जो चरण शिवजी और ब्रह्माजीके द्वारा पूज्य हैं, तथा जिन चरणोंकी कल्याणमयी रजका स्पर्श पाकर [शिला बनी हुई] गौतम ऋषिकी पत्नी अहल्या तर गयी; जिन चरणोंके नखसे मुनियोंद्वारा वन्दित, त्रैलोक्यको पवित्र करनेवाली देवनदी गङ्गाजी निकलीं और ध्वजा, वज्र, अङ्कुश और कमल—इन चिह्नोंसे युक्त जिन चरणोंमें वनमें फिरते समय काँटे चुभ जानेसे घट्ठे पड़ गये हैं; हे मुकुन्द! हे राम! हे रमापति! हम आपके उन्हीं दोनों चरणकमलोंको नित्य भजते रहते हैं॥ ४॥

अब्यक्तमूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने।
षट कंध साखा पंच बीस अनेक पर्न सुमन घने॥
फल जुगल बिधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे।
पल्लवत फूलत नवल नित संसार बिटप नमामहे॥ ५॥

वेद-शास्त्रोंने कहा है कि जिसका मूल अव्यक्त (प्रकृति) है; जो [प्रवाहरूपसे] अनादि है; जिसके चार त्वचाएँ, छः तने, पचीस शाखाएँ और अनेकों पत्ते और बहुत-से फूल हैं; जिसमें कड़वे और मीठे दो प्रकारके फल लगे हैं; जिसपर एक ही बेल है जो उसीके आश्रित रहती है; जिसमें नित्य नये पत्ते और फूल निकलते रहते हैं; ऐसे संसारवृक्षस्वरूप (विश्वरूपमें प्रकट) आपको हम नमस्कार करते हैं॥ ५॥

जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य मनपर ध्यावहीं।
ते कहहुँ जानहुँ नाथ हम तव सगुन जस नित गावहीं॥
करुनायतन प्रभु सदगुनाकर देव यह बर मागहीं।
मन बचन कर्म बिकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं॥ ६॥

ब्रह्म अजन्मा है, अद्वैत है, केवल अनुभवसे ही जाना जाता है और मनसे परे है—जो [इस प्रकार कहकर उस] ब्रह्मका ध्यान करते हैं, वे ऐसा कहा करें और जाना करें किन्तु हे नाथ! हम तो नित्य आपका सगुण यश ही गाते हैं। हे करुणाके धाम प्रभो! हे सद्गुणोंकी खान! हे देव! हम यह वर माँगते हैं कि मन, वचन और कर्मसे विकारोंको त्यागकर आपके चरणोंमें ही प्रेम करें॥ ६॥

दो०—सब के देखत बेदन्ह बिनती कीन्हि उदार।
अंतर्धान भए पुनि गए ब्रह्म आगार॥ १३ (क)॥

वेदोंने सबके देखते यह श्रेष्ठ विनती की। फिर वे अन्तर्धान हो गये और ब्रह्मलोकको चले गये॥ १३ (क)॥

बैनतेय सुनु संभु तब आए जहँ रघुबीर।
बिनय करत गदगद गिरा पूरित पुलक सरीर॥ १३ (ख)॥

[काकभुशुण्डिजी कहते हैं—] हे गरुड़जी! सुनिये, तब शिवजी वहाँ आये जहाँ श्रीरघुवीर थे और गद्गद वाणीसे स्तुति करने लगे। उनका शरीर पुलकावलीसे पूर्ण हो गया—॥ १३ (ख)॥

छं०—**जय राम रमारमनं समनं। भवताप भयाकुल पाहि जनं।**
अवधेस सुरेस रमेस बिभो। सरनागत मागत पाहि प्रभो॥ १॥

हे राम! हे रमारमण (लक्ष्मीकान्त)! हे जन्म-मरणके संतापका नाश करनेवाले! आपकी जय हो; आवागमनके भयसे व्याकुल इस सेवककी रक्षा कीजिये। हे अवधपति! हे देवताओंके स्वामी! हे रमापति! हे विभो! मैं शरणागत आपसे यही माँगता हूँ कि हे प्रभो! मेरी रक्षा कीजिये॥ १॥

दससीस बिनासन बीस भुजा। कृत दूरि महा महि भूरि रुजा॥
रजनीचर बृंद पतंग रहे। सर पावक तेज प्रचंड दहे॥ २॥

हे दस सिर और बीस भुजाओंवाले रावणका विनाश करके पृथ्वीके सब महान् रोगों (कष्टों)को दूर करनेवाले श्रीरामजी! राक्षससमूहरूपी जो पतंगे थे, वे सब आपके बाणरूपी अग्निके प्रचण्ड तेजसे भस्म हो गये॥ २॥

महि मंडल मंडन चारुतरं। धृत सायक चाप निषंग बरं॥
मद मोह महा ममता रजनी। तम पुंज दिवाकर तेज अनी॥ ३॥

आप पृथ्वीमण्डलके अत्यन्त सुन्दर आभूषण हैं; आप श्रेष्ठ बाण, धनुष और तरकस धारण किये हुए हैं। महान् मद, मोह और ममतारूपी रात्रिके अन्धकारसमूहके नाश करनेके लिये आप सूर्यके तेजोमय किरणसमूह हैं॥ ३॥

मनजात किरात निपात किए। मृग लोग कुभोग सरेन हिए॥
हति नाथ अनाथनि पाहि हरे। बिषया बन पावँर भूलि परे॥ ४॥

कामदेवरूपी भीलने मनुष्यरूपी हिरनोंके हृदयमें कुभोगरूपी बाण मारकर उन्हें गिरा दिया है। हे नाथ! हे [पाप-तापका हरण करनेवाले] हरे! उसे मारकर विषयरूपी वनमें भूले पड़े हुए इन पामर अनाथ जीवोंकी रक्षा कीजिये॥ ४॥

बहु रोग बियोगन्हि लोग हए। भवदंघ्रि निरादर के फल ए॥
भव सिंधु अगाध परे नर ते। पद पंकज प्रेम न जे करते॥ ५॥

लोग बहुत-से रोगों और वियोगों (दुःखों) से मारे हुए हैं। ये सब आपके चरणोंके निरादरके फल हैं। जो मनुष्य आपके चरणकमलोंमें प्रेम नहीं करते, वे अथाह भवसागरमें पड़े हैं॥ ५॥

अति दीन मलीन दुखी नितहीं। जिन्ह कें पद पंकज प्रीति नहीं॥
अवलंब भवंत कथा जिन्ह कें। प्रिय संत अनंत सदा तिन्ह कें॥ ६॥

जिन्हें आपके चरणकमलोंमें प्रीति नहीं है वे नित्य ही अत्यन्त दीन, मलिन

(उदास) और दुःखी रहते हैं। और जिन्हें आपकी लीला-कथाका आधार है, उनको संत और भगवान् सदा प्रिय लगने लगते हैं॥ ६॥

नहिं राग न लोभ न मान मदा। तिन्ह कें सम बैभव वा बिपदा॥

एहि ते तव सेवक होत मुदा। मुनि त्यागत जोग भरोस सदा॥ ७॥

उनमें न राग (आसक्ति) है, न लोभ; न मान है, न मद। उनको सम्पत्ति (सुख) और विपत्ति (दुःख) समान है। इसीसे मुनिलोग योग (साधन) का भरोसा सदाके लिये त्याग देते हैं और प्रसन्नताके साथ आपके सेवक बन जाते हैं॥ ७॥

करि प्रेम निरंतर नेम लिएँ। पद पंकज सेवत सुद्ध हिएँ॥

सम मानि निरादर आदरही। सब संत सुखी बिचरंति मही॥ ८॥

वे प्रेमपूर्वक नियम लेकर निरन्तर शुद्ध हृदयसे आपके चरणकमलोंकी सेवा करते रहते हैं और निरादर और आदरको समान मानकर वे सब संत सुखी होकर पृथ्वीपर विचरते हैं॥ ८॥

मुनि मानस पंकज भृंग भजे। रघुबीर महा रनधीर अजे॥

तव नाम जपामि नमामि हरी। भव रोग महागद मान अरी॥ ९॥

हे मुनियोंके मनरूपी कमलके भ्रमर! हे महान् रणधीर एवं अजेय श्रीरघुवीर! मैं आपको भजता हूँ (आपकी शरण ग्रहण करता हूँ)। हे हरि! आपका नाम जपता हूँ और आपको नमस्कार करता हूँ। आप जन्म-मरणरूपी रोगकी महान् औषध और अभिमानके शत्रु हैं॥ ९॥

गुन सील कृपा परमायतनं। प्रनमामि निरंतर श्रीरमनं॥

रघुनंद निकंदय द्वंद्वघनं। महिपाल बिलोकय दीन जनं॥ १०॥

आप गुण, शील और कृपाके परम स्थान हैं। आप लक्ष्मीपति हैं, मैं आपको निरन्तर प्रणाम करता हूँ। हे रघुनन्दन! [आप जन्म-मरण, सुख-दुःख, राग-द्वेषादि] द्वन्द्वसमूहोंका नाश कीजिये। हे पृथ्वीकी पालना करनेवाले राजन्! इस दीन जनकी ओर भी दृष्टि डालिये॥ १०॥

दो०—बार बार बर मागउँ हरषि देहु श्रीरंग।
पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग॥ १४ (क)॥

मैं आपसे बार-बार यही वरदान माँगता हूँ कि मुझे आपके चरणकमलोंकी अचल भक्ति और आपके भक्तोंका सत्संग सदा प्राप्त हो। हे लक्ष्मीपते! हर्षित होकर मुझे यही दीजिये॥ १४ (क)॥

बरनि उमापति राम गुन हरषि गए कैलास।
तब प्रभु कपिन्ह दिवाए सब बिधि सुखप्रद बास॥ १४ (ख)॥

श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंका वर्णन करके उमापति महादेवजी हर्षित होकर कैलासको चले गये। तब प्रभुने वानरोंको सब प्रकारसे सुख देनेवाले डेरे दिलवाये॥ १४ (ख)॥

चौ०—सुनु खगपति यह कथा पावनी। त्रिबिध ताप भव भय दावनी॥
महाराज कर सुभ अभिषेका। सुनत लहहिं नर बिरति बिबेका॥ १॥

हे गरुड़जी! सुनिये, यह कथा [सबको] पवित्र करनेवाली है, [दैहिक, दैविक, भौतिक] तीनों प्रकारके तापोंका और जन्म-मृत्युके भयका नाश करनेवाली है। महाराज श्रीरामचन्द्रजीके कल्याणमय राज्याभिषेकका चरित्र [निष्कामभावसे] सुनकर मनुष्य वैराग्य और ज्ञान प्राप्त करते हैं॥ १॥

जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं। सुख संपति नाना बिधि पावहिं॥
सुर दुर्लभ सुख करि जग माहीं। अंतकाल रघुपति पुर जाहीं॥ २॥

और जो मनुष्य सकामभावसे सुनते और जो गाते हैं, वे अनेकों प्रकारके सुख और सम्पत्ति पाते हैं। वे जगत्‌में देवदुर्लभ सुखोंको भोगकर अन्तकालमें श्रीरघुनाथजीके परमधामको जाते हैं॥ २॥

सुनहिं बिमुक्त बिरत अरु बिषई। लहहिं भगति गति संपति नई॥
खगपति राम कथा मैं बरनी। स्वमति बिलास त्रास दुख हरनी॥ ३॥

इसे जो जीवन्मुक्त, विरक्त और विषयी सुनते हैं, वे [क्रमशः] भक्ति, मुक्ति और नवीन सम्पत्ति (नित्य नये भोग) पाते हैं। हे पक्षिराज गरुड़जी! मैंने अपनी बुद्धिकी पहुँचके अनुसार रामकथा वर्णन की है, जो [जन्म-मरणके] भय और दुःखको हरनेवाली है॥ ३॥

बिरति बिबेक भगति दृढ़ करनी। मोह नदी कहँ सुंदर तरनी॥
नित नव मंगल कौसलपुरी। हरषित रहहिं लोग सब कुरी॥ ४॥

यह वैराग्य, विवेक और भक्तिको दृढ़ करनेवाली है तथा मोहरूपी नदीके [पार करनेके] लिये सुन्दर नाव है। अवधपुरीमें नित-नये मङ्गलोत्सव होते हैं। सभी वर्गोंके लोग हर्षित रहते हैं॥ ४॥

नित नइ प्रीति राम पद पंकज। सब कें जिन्हहि नमत सिव मुनि अज॥
मंगन बहु प्रकार पहिराए। द्विजन्ह दान नाना बिधि पाए॥ ५॥

श्रीरामजीके चरणकमलोंमें—जिन्हें श्रीशिवजी, मुनिगण और ब्रह्माजी भी नमस्कार करते हैं—सबकी नित्य नवीन प्रीति है। भिक्षुकोंको बहुत प्रकारके वस्त्राभूषण पहनाये गये और ब्राह्मणोंने नाना प्रकारके दान पाये॥ ५॥

दो०—ब्रह्मानंद मगन कपि सब कें प्रभु पद प्रीति।
जात न जाने दिवस तिन्ह गए मास षट बीति॥ १५॥

वानर सब ब्रह्मानन्दमें मग्न हैं। प्रभुके चरणोंमें सबका प्रेम है। उन्होंने दिन जाते जाने ही नहीं और [बात-की-बातमें] छः महीने बीत गये॥ १५॥

चौ०—बिसरे गृह सपनेहुँ सुधि नाहीं। जिमि परद्रोह संत मन माहीं॥
तब रघुपति सब सखा बोलाए। आइ सबन्हि सादर सिरु नाए॥ १॥

उन लोगोंको अपने घर भूल ही गये। [जाग्रत्‌की तो बात ही क्या] उन्हें स्वप्नमें भी घरकी सुध (याद) नहीं आती, जैसे संतोंके मनमें दूसरोंसे द्रोह करनेकी बात कभी नहीं आती। तब श्रीरघुनाथजीने सब सखाओंको बुलाया। सबने आकर आदरसहित सिर नवाया॥ १॥

परम प्रीति समीप बैठारे। भगत सुखद मृदु बचन उचारे॥
तुम्ह अति कीन्हि मोरि सेवकाई। मुख पर केहि बिधि करौं बड़ाई॥ २॥

बड़े ही प्रेमसे श्रीरामजीने उनको अपने पास बैठाया और भक्तोंको सुख देनेवाले कोमल वचन कहे—तुमलोगोंने मेरी बड़ी सेवा की है। मुँहपर किस प्रकार तुम्हारी बड़ाई करूँ?॥ २॥

ताते मोहि तुम्ह अति प्रिय लागे। मम हित लागि भवन सुख त्यागे॥
अनुज राज संपति बैदेही। देह गेह परिवार सनेही॥ ३॥

मेरे हितके लिये तुमलोगोंने घरोंको तथा सब प्रकारके सुखोंको त्याग दिया। इससे तुम मुझे अत्यन्त ही प्रिय लग रहे हो। छोटे भाई, राज्य, सम्पत्ति, जानकी, अपना शरीर, घर, कुटुम्ब और मित्र—॥ ३॥

सब मम प्रिय नहिं तुम्हहि समाना। मृषा न कहउँ मोर यह बाना॥
सब कें प्रिय सेवक यह नीती। मोरें अधिक दास पर प्रीती॥ ४॥

ये सभी मुझे प्रिय हैं, परंतु तुम्हारे समान नहीं। मैं झूठ नहीं कहता, यह मेरा स्वभाव है। सेवक सभीको प्यारे लगते हैं, यह नीति (नियम) है। [पर] मेरा तो दासपर [स्वाभाविक ही] विशेष प्रेम है॥ ४॥

दो०—अब गृह जाहु सखा सब भजेहु मोहि दृढ़ नेम।
सदा सर्बगत सर्बहित जानि करेहु अति प्रेम॥ १६॥

हे सखागण! अब सब लोग घर जाओ; वहाँ दृढ़ नियमसे मुझे भजते रहना। मुझे सदा सर्वव्यापक और सबका हित करनेवाला जानकर अत्यन्त प्रेम करना॥ १६॥

चौ०—सुनि प्रभु बचन मगन सब भए। को हम कहाँ बिसरि तन गए॥
एकटक रहे जोरि कर आगे। सकहिं न कछु कहि अति अनुरागे॥ १॥

प्रभुके वचन सुनकर सब-के-सब प्रेममग्न हो गये। हम कौन हैं और कहाँ हैं? यह देहकी सुध भी भूल गयी। वे प्रभुके सामने हाथ जोड़कर टकटकी लगाये देखते ही रह गये। अत्यन्त प्रेमके कारण कुछ कह नहीं सकते॥ १॥

परम प्रेम तिन्ह कर प्रभु देखा। कहा बिबिधि बिधि ग्यान बिसेषा॥
प्रभु सन्मुख कछु कहन न पारहिं। पुनि पुनि चरन सरोज निहारहिं॥ २॥

प्रभुने उनका अत्यन्त प्रेम देखा, [तब] उन्हें अनेकों प्रकारसे विशेष ज्ञानका उपदेश दिया। प्रभुके सम्मुख वे कुछ कह नहीं सकते। बार-बार प्रभुके चरणकमलोंको देखते हैं॥ २॥

तब प्रभु भूषन बसन मगाए। नाना रंग अनूप सुहाए॥
सुग्रीवहि प्रथमहिं पहिराए। बसन भरत निज हाथ बनाए॥ ३॥

तब प्रभुने अनेक रंगोंके अनुपम और सुन्दर गहने-कपड़े मँगवाये। सबसे पहले भरतजीने अपने हाथसे सँवारकर सुग्रीवको वस्त्राभूषण पहनाये॥ ३॥

प्रभु प्रेरित लछिमन पहिराए। लंकापति रघुपति मन भाए॥
अंगद बैठ रहा नहिं डोला। प्रीति देखि प्रभु ताहि न बोला॥ ४॥

फिर प्रभुकी प्रेरणासे लक्ष्मणजीने विभीषणजीको गहने-कपड़े पहनाये, जो श्रीरघुनाथजीके मनको बहुत ही अच्छे लगे। अङ्गद बैठे ही रहे, वे अपनी जगहसे

हिलेतक नहीं। उनका उत्कट प्रेम देखकर प्रभुने उनको नहीं बुलाया॥ ४॥

दो०—जामवंत नीलादि सब पहिराए रघुनाथ।
हियँ धरि राम रूप सब चले नाइ पद माथ॥ १७ (क)॥

जाम्बवान् और नील आदि सबको श्रीरघुनाथजीने स्वयं भूषण-वस्त्र पहनाये। वे सब अपने हृदयोंमें श्रीरामचन्द्रजीके रूपको धारण करके उनके चरणोंमें मस्तक नवाकर चले॥ १७ (क)॥

तब अंगद उठि नाइ सिरु सजल नयन कर जोरि।
अति बिनीत बोलेउ बचन मनहुँ प्रेमरस बोरि॥ १७ (ख)॥

तब अङ्गद उठकर सिर नवाकर, नेत्रोंमें जल भरकर और हाथ जोड़कर अत्यन्त विनम्र तथा मानो प्रेमके रसमें डुबोये हुए (मधुर) वचन बोले॥ १७ (ख)॥

चौ०—सुनु सर्बग्य कृपा सुख सिंधो। दीन दयाकर आरत बंधो॥
मरती बेर नाथ मोहि बाली। गयउ तुम्हारेहि कोंछें घाली॥ १॥

हे सर्वज्ञ! हे कृपा और सुखके समुद्र! हे दीनोंपर दया करनेवाले! हे आर्तोंके बन्धु! सुनिये! हे नाथ! मरते समय मेरा पिता बालि मुझे आपकी ही गोदमें डाल गया था॥ १॥

असरन सरन बिरदु संभारी। मोहि जनि तजहु भगत हितकारी॥
मोरें तुम्ह प्रभु गुर पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता॥ २॥

अतः हे भक्तोंके हितकारी! अपना अशरण-शरण विरद (बाना) याद करके मुझे त्यागिये नहीं। मेरे तो स्वामी, गुरु, पिता और माता, सब कुछ आप ही हैं। आपके चरणकमलोंको छोड़कर मैं कहाँ जाऊँ?॥ २॥

तुम्हहि बिचारि कहहु नरनाहा। प्रभु तजि भवन काज मम काहा॥
बालक ग्यान बुद्धि बल हीना। राखहु सरन नाथ जन दीना॥ ३॥

हे महाराज! आप ही विचारकर कहिये, प्रभु (आप) को छोड़कर घरमें मेरा क्या काम है? हे नाथ! इस ज्ञान, बुद्धि और बलसे हीन बालक तथा दीन सेवकको शरणमें रखिये॥ ३॥

नीचि टहल गृह कै सब करिहउँ। पद पंकज बिलोकि भव तरिहउँ॥
अस कहि चरन परेउ प्रभु पाही। अब जनि नाथ कहहु गृह जाही॥ ४॥

मैं घरकी सब नीची-से-नीची सेवा करूँगा और आपके चरणकमलोंको देख-देखकर भवसागरसे तर जाऊँगा। ऐसा कहकर वे श्रीरामजीके चरणोंमें गिर पड़े [और बोले—] हे प्रभो! मेरी रक्षा कीजिये। हे नाथ! अब यह न कहिये कि तू घर जा॥ ४॥

दो०—अंगद बचन बिनीत सुनि रघुपति करुना सींव।
प्रभु उठाइ उर लायउ सजल नयन राजीव॥ १८ (क)॥

अङ्गदके विनम्र वचन सुनकर करुणाकी सीमा प्रभु श्रीरघुनाथजीने उनको उठाकर हृदयसे लगा लिया। प्रभुके नेत्रकमलोंमें [प्रेमाश्रुओंका] जल भर आया॥ १८ (क)॥

निज उर माल बसन मनि बालितनय पहिराइ।
बिदा कीन्हि भगवान तब बहु प्रकार समुझाइ॥ १८ (ख)॥

तब भगवान्‌ने अपने हृदयकी माला, वस्त्र और मणि (रत्नोंके आभूषण) बालि-पुत्र अङ्गदको पहनाकर और बहुत प्रकारसे समझाकर उनकी विदाई की॥ १८ (ख)॥

चौ०—भरत अनुज सौमित्रि समेता। पठवन चले भगत कृत चेता॥
अंगद हृदयँ प्रेम नहिं थोरा। फिरि फिरि चितव राम कीं ओरा॥ १॥

भक्तकी करनीको याद करके भरतजी छोटे भाई शत्रुघ्नजी और लक्ष्मणजीसहित उनको पहुँचाने चले। अङ्गदके हृदयमें थोड़ा प्रेम नहीं है (अर्थात् बहुत अधिक प्रेम है)। वे फिर-फिरकर श्रीरामजीकी ओर देखते हैं॥ १॥

बार बार कर दंड प्रनामा। मन अस रहन कहहिं मोहि रामा॥
राम बिलोकनि बोलनि चलनी। सुमिरि सुमिरि सोचत हँसि मिलनी॥ २॥

और बार-बार दण्डवत्-प्रणाम करते हैं। मनमें ऐसा आता है कि श्रीरामजी मुझे रहनेको कह दें। वे श्रीरामजीके देखनेकी, बोलनेकी, चलनेकी तथा हँसकर मिलनेकी रीतिको याद कर-करके सोचते हैं (दुःखी होते हैं)॥ २॥

प्रभु रुख देखि बिनय बहु भाषी। चलेउ हृदयँ पद पंकज राखी॥
अति आदर सब कपि पहुँचाए। भाइन्ह सहित भरत पुनि आए॥ ३॥

किन्तु प्रभुका रुख देखकर, बहुत-से विनय-वचन कहकर तथा हृदयमें चरण-कमलोंको रखकर वे चले। अत्यन्त आदरके साथ सब वानरोंको पहुँचाकर भाइयोंसहित भरतजी लौट आये॥ ३॥

तब सुग्रीव चरन गहि नाना। भाँति बिनय कीन्हे हनुमाना॥
दिन दस करि रघुपति पद सेवा। पुनि तव चरन देखिहउँ देवा॥ ४॥

तब हनुमान्‌जीने सुग्रीवके चरण पकड़कर अनेक प्रकारसे विनती की और कहा—हे देव! दस (कुछ) दिन श्रीरघुनाथजीकी चरणसेवा करके फिर मैं आकर आपके चरणोंके दर्शन करूँगा॥ ४॥

पुन्य पुंज तुम्ह पवनकुमारा। सेवहु जाइ कृपा आगारा॥
अस कहि कपि सब चले तुरंता। अंगद कहइ सुनहु हनुमंता॥ ५॥

[सुग्रीवने कहा—] हे पवनकुमार! तुम पुण्यकी राशि हो [जो भगवान्‌ने तुमको अपनी सेवामें रख लिया] जाकर कृपाधाम श्रीरामजीकी सेवा करो। सब वानर ऐसा कहकर तुरन्त चल पड़े। अङ्गदने कहा—हे हनुमान्! सुनो—॥ ५॥

दो०—कहेहु दंडवत प्रभु सैं तुम्हहि कहउँ कर जोरि।
बार बार रघुनायकहि सुरति कराएहु मोरि॥ १९ (क)॥

मैं तुमसे हाथ जोड़कर कहता हूँ, प्रभुसे मेरी दण्डवत् कहना और श्रीरघुनाथजीको बार-बार मेरी याद कराते रहना॥ १९ (क)॥

अस कहि चलेउ बालिसुत फिरि आयउ हनुमंत।
तासु प्रीति प्रभु सन कही मगन भए भगवंत॥ १९ (ख)॥

ऐसा कहकर बालिपुत्र अङ्गद चले, तब हनुमान्‌जी लौट आये और आकर प्रभुसे उनका प्रेम वर्णन किया। उसे सुनकर भगवान् प्रेममग्न हो गये॥ १९ (ख)॥

कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि।
चित्त खगेस राम कर समुझि परइ कहु काहि॥ १९ (ग)॥

[काकभुशुण्डिजी कहते हैं—] हे गरुड़जी! श्रीरामजीका चित्त वज्रसे भी अत्यन्त कठोर और फूलसे भी अत्यन्त कोमल है। तब कहिये, वह किसकी समझमें आ सकता है?॥ १९ (ग)॥

चौ०—पुनि कृपाल लियो बोलि निषादा। दीन्हे भूषन बसन प्रसादा॥
जाहु भवन मम सुमिरन करेहू। मन क्रम बचन धर्म अनुसरेहू॥ १॥

फिर कृपालु श्रीरामजीने निषादराजको बुला लिया और उसे भूषण, वस्त्र प्रसादमें दिये। [फिर कहा—] अब तुम भी घर जाओ, वहाँ मेरा स्मरण करते रहना और मन, वचन तथा कर्मसे धर्मके अनुसार चलना॥ १॥

तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहेहु पुर आवत जाता॥
बचन सुनत उपजा सुख भारी। परेउ चरन भरि लोचन बारी॥ २॥

तुम मेरे मित्र हो और भरतके समान भाई हो। अयोध्यामें सदा आते-जाते रहना। यह वचन सुनते ही उसको भारी सुख उत्पन्न हुआ। नेत्रोंमें [आनन्द और प्रेमके आँसुओंका] जल भरकर वह चरणोंमें गिर पड़ा॥ २॥

चरन नलिन उर धरि गृह आवा। प्रभु सुभाउ परिजनन्हि सुनावा॥
रघुपति चरित देखि पुरबासी। पुनि पुनि कहहिं धन्य सुखरासी॥ ३॥

फिर भगवान्‌के चरणकमलोंको हृदयमें रखकर वह घर आया और आकर अपने कुटुम्बियोंको उसने प्रभुका स्वभाव सुनाया। श्रीरघुनाथजीका यह चरित्र देखकर अवध-पुरवासी बार-बार कहते हैं कि सुखकी राशि श्रीरामचन्द्रजी धन्य हैं॥ ३॥

राम राज बैठें त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका॥
बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप बिषमता खोई॥ ४॥

श्रीरामचन्द्रजीके राज्यपर प्रतिष्ठित होनेपर तीनों लोक हर्षित हो गये, उनके सारे शोक जाते रहे। कोई किसीसे वैर नहीं करता। श्रीरामचन्द्रजीके प्रतापसे सबकी विषमता (आन्तरिक भेदभाव) मिट गयी॥ ४॥

दो०—बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग॥ २०॥

सब लोग अपने-अपने वर्ण और आश्रमके अनुकूल धर्ममें तत्पर हुए सदा वेदमार्गपर चलते हैं और सुख पाते हैं। उन्हें न किसी बातका भय है, न शोक है और न कोई रोग ही सताता है॥ २०॥

चौ०—दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती॥ १॥

'राम-राज्य' में दैहिक, दैविक और भौतिक ताप किसीको नहीं व्यापते। सब मनुष्य परस्पर प्रेम करते हैं और वेदोंमें बतायी हुई नीति (मर्यादा) में तत्पर रहकर अपने-अपने धर्मका पालन करते हैं॥ १॥

चारिउ चरन धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं॥
राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी॥ २॥

धर्म अपने चारों चरणों (सत्य, शौच, दया और दान) से जगत्‌में परिपूर्ण हो रहा है; स्वप्नमें भी कहीं पाप नहीं है। पुरुष और स्त्री सभी रामभक्तिके परायण हैं और सभी परमगति (मोक्ष) के अधिकारी हैं॥ २॥

अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब बिरुज सरीरा॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना॥ ३॥

छोटी अवस्थामें मृत्यु नहीं होती, न किसीको कोई पीड़ा होती है। सभीके शरीर सुन्दर और नीरोग हैं। न कोई दरिद्र है, न दुःखी है और न दीन ही है। न कोई मूर्ख है और न शुभ लक्षणोंसे हीन ही है॥ ३॥

सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी॥
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी॥ ४॥

सभी दम्भरहित हैं, धर्मपरायण हैं और पुण्यात्मा हैं। पुरुष और स्त्री सभी चतुर और गुणवान् हैं। सभी गुणोंका आदर करनेवाले और पण्डित हैं तथा सभी ज्ञानी हैं। सभी कृतज्ञ (दूसरेके किये हुए उपकारको माननेवाले) हैं, कपट-चतुराई (धूर्तता) किसीमें नहीं है॥ ४॥

दो०—राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं।
काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं॥ २१॥

[काकभुशुण्डिजी कहते हैं—] हे पक्षिराज गरुड़जी! सुनिये। श्रीरामके राज्यमें जड़, चेतन सारे जगत्‌में काल, कर्म, स्वभाव और गुणोंसे उत्पन्न हुए दुःख किसीको भी नहीं होते (अर्थात् इनके बन्धनमें कोई नहीं है)॥ २१॥

चौ०—भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला॥
भुअन अनेक रोम प्रति जासू। यह प्रभुता कछु बहुत न तासू॥ १॥

अयोध्यामें श्रीरघुनाथजी सात समुद्रोंकी मेखला (करधनी) वाली पृथ्वीके एकमात्र राजा हैं। जिनके एक-एक रोममें अनेकों ब्रह्माण्ड हैं, उनके लिये सात द्वीपोंकी यह प्रभुता कुछ अधिक नहीं है॥ १॥

सो महिमा समुझत प्रभु केरी। यह बरनत हीनता घनेरी॥
सोउ महिमा खगेस जिन्ह जानी। फिरि एहिं चरित तिन्हहुँ रति मानी॥ २॥

बल्कि प्रभुकी उस महिमाको समझ लेनेपर तो यह कहनेमें [कि वे सात समुद्रोंसे घिरी हुई सप्तद्वीपमयी पृथ्वीके एकच्छत्र सम्राट् हैं] उनकी बड़ी हीनता होती है। परन्तु हे गरुड़जी! जिन्होंने वह महिमा जान भी ली है, वे भी फिर इस लीलामें बड़ा प्रेम मानते हैं॥ २॥

सोउ जाने कर फल यह लीला। कहहिं महा मुनिबर दमसीला॥
राम राज कर सुख संपदा। बरनि न सकइ फनीस सारदा॥ ३॥

क्योंकि उस महिमाको भी जाननेका फल यह लीला (इस लीलाका अनुभव) ही है, इन्द्रियोंका दमन करनेवाले श्रेष्ठ महामुनि ऐसा कहते हैं। रामराज्यकी सुख-

सम्पत्तिका वर्णन शेषजी और सरस्वतीजी भी नहीं कर सकते॥ ३॥

सब उदार सब पर उपकारी। बिप्र चरन सेवक नर नारी॥
एकनारि ब्रत रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी॥ ४॥

सभी नर-नारी उदार हैं, सभी परोपकारी हैं और ब्राह्मणोंके चरणोंके सेवक हैं। सभी पुरुषमात्र एकपत्नीव्रती हैं। इसी प्रकार स्त्रियाँ भी मन, वचन और कर्मसे पतिका हित करनेवाली हैं॥ ४॥

दो०—दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचंद्र कें राज॥ २२॥

श्रीरामचन्द्रजीके राज्यमें दण्ड केवल संन्यासियोंके हाथोंमें है और भेद नाचनेवालोंके नृत्यसमाजमें है और 'जीतो' शब्द केवल मनके जीतनेके लिये ही सुनायी पड़ता है (अर्थात् राजनीतिमें शत्रुओंको जीतने तथा चोर-डाकुओं आदिको दमन करनेके लिये साम, दान, दण्ड और भेद—ये चार उपाय किये जाते हैं। रामराज्यमें कोई शत्रु है ही नहीं, इसलिये 'जीतो' शब्द केवल मनके जीतनेके लिये कहा जाता है। कोई अपराध करता ही नहीं, इसलिये दण्ड किसीको नहीं होता; 'दण्ड' शब्द केवल संन्यासियोंके हाथमें रहनेवाले दण्डके लिये ही रह गया है। तथा सभी अनुकूल होनेके कारण भेदनीतिकी आवश्यकता ही नहीं रह गयी; 'भेद' शब्द केवल सुर-तालके भेदके लिये ही कामोंमें आता है।)॥ २२॥

चौ०—फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक सँग गज पंचानन॥
खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई॥ १॥

वनोंमें वृक्ष सदा फूलते और फलते हैं। हाथी और सिंह [वैर भूलकर] एक साथ रहते हैं। पक्षी और पशु सभीने स्वाभाविक वैर भुलाकर आपसमें प्रेम बढ़ा लिया है॥ १॥

कूजहिं खग मृग नाना बृंदा। अभय चरहिं बन करहिं अनंदा॥
सीतल सुरभि पवन बह मंदा। गुंजत अलि लै चलि मकरंदा॥ २॥

पक्षी कूजते (मीठी बोली बोलते) हैं, भाँति-भाँतिके पशुओंके समूह वनमें निर्भय विचरते और आनन्द करते हैं। शीतल, मन्द, सुगन्धित पवन चलता रहता है। भौंरे पुष्पोंका रस लेकर चलते हुए गुञ्जार करते जाते हैं॥ २॥

लता बिटप मागें मधु चवहीं। मनभावतो धेनु पय स्रवहीं॥
ससि संपन्न सदा रह धरनी। त्रेताँ भइ कृतजुग कै करनी॥ ३॥

बेलें और वृक्ष माँगनेसे ही मधु (मकरन्द) टपका देते हैं। गौएँ मनचाहा दूध देती हैं। धरती सदा खेतीसे भरी रहती है। त्रेतामें सत्ययुगकी करनी (स्थिति) हो गयी॥ ३॥

प्रगटीं गिरिन्ह बिबिधि मनि खानी। जगदातमा भूप जग जानी॥
सरिता सकल बहहिं बर बारी। सीतल अमल स्वाद सुखकारी॥ ४॥

समस्त जगत्के आत्मा भगवान्को जगत्का राजा जानकर पर्वतोंने अनेक प्रकारकी मणियोंकी खानें प्रकट कर दीं। सब नदियाँ श्रेष्ठ, शीतल, निर्मल और सुखप्रद स्वादिष्ट

जल बहने लगीं॥ ४॥

सागर निज मरजादाँ रहहीं। डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं॥
सरसिज संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा॥५॥

समुद्र अपनी मर्यादामें रहते हैं। वे लहरोंके द्वारा किनारोंपर रत्न डाल देते हैं, जिन्हें मनुष्य पा जाते हैं। सब तालाब कमलोंसे परिपूर्ण हैं। दसों दिशाओंके विभाग (अर्थात् सभी प्रदेश) अत्यन्त प्रसन्न हैं॥ ५॥

दो०—बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज।
मागें बारिद देहिं जल रामचंद्र कें राज॥ २३॥

श्रीरामचन्द्रजीके राज्यमें चन्द्रमा अपनी [अमृतमयी] किरणोंसे पृथ्वीको पूर्ण कर देते हैं। सूर्य उतना ही तपते हैं जितनेकी आवश्यकता होती है और मेघ माँगनेसे [जब जहाँ जितना चाहिये उतना ही] जल देते हैं॥ २३॥

चौ०—कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हे। दान अनेक द्विजन्ह कहँ दीन्हे॥
श्रुति पथ पालक धर्म धुरंधर। गुनातीत अरु भोग पुरंदर॥१॥

प्रभु श्रीरामजीने करोड़ों अश्वमेध यज्ञ किये और ब्राह्मणोंको अनेकों दान दिये। श्रीरामचन्द्रजी वेदमार्गके पालनेवाले, धर्मकी धुरीको धारण करनेवाले, [प्रकृतिजन्य सत्त्व, रज और तम] तीनों गुणोंसे अतीत और भोगों (ऐश्वर्य) में इन्द्रके समान हैं॥ १॥

पति अनुकूल सदा रह सीता। सोभा खानि सुसील बिनीता॥
जानति कृपासिंधु प्रभुताई। सेवति चरन कमल मन लाई॥ २॥

शोभाकी खान, सुशील और विनम्र सीताजी सदा पतिके अनुकूल रहती हैं। वे कृपासागर श्रीरामजीकी प्रभुता (महिमा) को जानती हैं और मन लगाकर उनके चरणकमलोंकी सेवा करती हैं॥ २॥

जद्यपि गृहँ सेवक सेवकिनी। बिपुल सदा सेवा बिधि गुनी॥
निज कर गृह परिचरजा करई। रामचंद्र आयसु अनुसरई॥ ३॥

यद्यपि घरमें बहुत-से (अपार) दास और दासियाँ हैं और वे सभी सेवाकी विधिमें कुशल हैं, तथापि [स्वामीकी सेवाका महत्त्व जाननेवाली] श्रीसीताजी घरकी सब सेवा अपने ही हाथोंसे करती हैं और श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाका अनुसरण करती हैं॥ ३॥

जेहि बिधि कृपासिंधु सुख मानइ। सोइ कर श्री सेवा बिधि जानइ॥
कौसल्यादि सासु गृह माहीं। सेवइ सबन्हि मान मद नाहीं॥४॥

कृपासागर श्रीरामचन्द्रजी जिस प्रकारसे सुख मानते हैं, श्रीजी वही करती हैं; क्योंकि वे सेवाकी विधिको जाननेवाली हैं। घरमें कौसल्या आदि सभी सासुओंकी सीताजी सेवा करती हैं, उन्हें किसी बातका अभिमान और मद नहीं है॥ ४॥

उमा रमा ब्रह्मादि बंदिता। जगदंबा संततमनिंदिता॥५॥

(शिवजी कहते हैं—) हे उमा! जगज्जननी रमा (सीताजी) ब्रह्मा आदि देवताओंसे वन्दित और सदा अनिन्दित (सर्वगुणसम्पन्न) हैं॥ ५॥

दो०—जासु कृपा कटाच्छु सुर चाहत चितव न सोइ।
राम पदारबिंद रति करति सुभावहि खोइ॥ २४॥

देवता जिनका कृपाकटाक्ष चाहते हैं, परन्तु वे उनकी ओर देखतीं भी नहीं, वे ही लक्ष्मीजी (जानकीजी) अपने [महामहिम] स्वभावको छोड़कर श्रीरामचन्द्रजीके चरणारविन्दमें प्रीति करती हैं॥ २४॥

चौ०—सेवहिं सानकूल सब भाई। राम चरन रति अति अधिकाई॥
प्रभु मुख कमल बिलोकत रहहीं। कबहुँ कृपाल हमहि कछु कहहीं॥ १॥

सब भाई अनुकूल रहकर उनकी सेवा करते हैं। श्रीरामजीके चरणोंमें उनकी अत्यन्त अधिक प्रीति है। वे सदा प्रभुका मुखारविन्द ही देखते रहते हैं कि कृपालु श्रीरामजी कभी हमें कुछ सेवा करनेको कहें॥ १॥

राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती। नाना भाँति सिखावहिं नीती॥
हरषित रहहिं नगर के लोगा। करहिं सकल सुर दुर्लभ भोगा॥ २॥

श्रीरामचन्द्रजी भी भाइयोंपर प्रेम करते हैं और उन्हें नाना प्रकारकी नीतियाँ सिखलाते हैं। नगरके लोग हर्षित रहते हैं और सब प्रकारके देवदुर्लभ (देवताओंको भी कठिनतासे प्राप्त होने योग्य) भोग भोगते हैं॥ २॥

अहनिसि बिधिहि मनावत रहहीं। श्रीरघुबीर चरन रति चहहीं॥
दुइ सुत सुंदर सीताँ जाए। लव कुस बेद पुरानन्ह गाए॥ ३॥

वे दिन-रात ब्रह्माजीको मनाते रहते हैं और [उनसे] श्रीरघुवीरके चरणोंमें प्रीति चाहते हैं। सीताजीके लव और कुश—ये दो पुत्र उत्पन्न हुए, जिनका वेद-पुराणोंने वर्णन किया है॥ ३॥

दोउ बिजई बिनई गुन मंदिर। हरि प्रतिबिंब मनहुँ अति सुंदर॥
दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे। भए रूप गुन सील घनेरे॥ ४॥

वे दोनों ही विजयी (विख्यात योद्धा), नम्र और गुणोंके धाम हैं और अत्यन्त सुन्दर हैं, मानो श्रीहरिके प्रतिबिम्ब ही हों। दो-दो पुत्र सभी भाइयोंके हुए, जो बड़े ही सुन्दर, गुणवान् और सुशील थे॥ ४॥

दो०—ग्यान गिरा गोतीत अज माया मन गुन पार।
सोइ सच्चिदानंद घन कर नर चरित उदार॥ २५॥

जो [बौद्धिक] ज्ञान, वाणी और इन्द्रियोंसे परे और अजन्मा हैं तथा माया, मन और गुणोंके परे हैं, वही सच्चिदानन्दघन भगवान् श्रेष्ठ नरलीला करते हैं॥ २५॥

चौ०—प्रातकाल सरऊ करि मज्जन। बैठहिं सभाँ संग द्विज सज्जन॥
बेद पुरान बसिष्ट बखानहिं। सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं॥ १॥

प्रात:काल सरयूजीमें स्नान करके ब्राह्मणों और सज्जनोंके साथ सभामें बैठते हैं। वसिष्ठजी वेद और पुराणोंकी कथाएँ वर्णन करते हैं और श्रीरामजी सुनते हैं, यद्यपि वे सब जानते हैं॥ १॥

अनुजन्ह संजुत भोजन करहीं। देखि सकल जननीं सुख भरहीं॥
भरत सत्रुहन दोनउ भाई। सहित पवनसुत उपबन जाई॥ २॥

वे भाइयोंको साथ लेकर भोजन करते हैं। उन्हें देखकर सभी माताएँ आनन्दसे भर जाती हैं। भरतजी और शत्रुघ्नजी दोनों भाई हनुमान्‌जीसहित उपवनोंमें जाकर, ॥ २ ॥

बूझहिं बैठि राम गुन गाहा। कह हनुमान सुमति अवगाहा॥
सुनत बिमल गुन अति सुख पावहिं। बहुरि बहुरि करि बिनय कहावहिं॥ ३॥

वहाँ बैठकर श्रीरामजीके गुणोंकी कथाएँ पूछते हैं और हनुमान्‌जी अपनी सुन्दर बुद्धिसे उन गुणोंमें गोता लगाकर उनका वर्णन करते हैं। श्रीरामचन्द्रजीके निर्मल गुणोंको सुनकर दोनों भाई अत्यन्त सुख पाते हैं और विनय करके बार-बार कहलवाते हैं॥ ३॥

सब कें गृह गृह होहिं पुराना। राम चरित पावन बिधि नाना॥
नर अरु नारि राम गुन गानहिं। करहिं दिवस निसि जात न जानहिं॥ ४॥

सबके यहाँ घर-घरमें पुराणों और अनेक प्रकारके पवित्र रामचरित्रोंकी कथा होती है। पुरुष और स्त्री सभी श्रीरामचन्द्रजीका गुणगान करते हैं और इस आनन्दमें दिन-रातका बीतना भी नहीं जान पाते॥ ४॥

दो०—अवधपुरी बासिन्ह कर सुख संपदा समाज।
सहस सेष नहिं कहि सकहिं जहँ नृप राम बिराज॥ २६॥

जहाँ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी स्वयं राजा होकर विराजमान हैं, उस अवधपुरीके निवासियोंके सुख-सम्पत्तिके समुदायका वर्णन हजारों शेषजी भी नहीं कर सकते॥ २६॥

चौ०—नारदादि सनकादि मुनीसा। दरसन लागि कोसलाधीसा॥
दिन प्रति सकल अजोध्या आवहिं। देखि नगरु बिरागु बिसरावहिं॥ १॥

नारद आदि और सनक आदि मुनीश्वर सब कोसलराज श्रीरामजीके दर्शनके लिये प्रतिदिन अयोध्या आते हैं और उस [दिव्य] नगरको देखकर वैराग्य भुला देते हैं॥ १॥

जातरूप मनि रचित अटारीं। नाना रंग रुचिर गच ढारीं॥
पुर चहुँ पास कोट अति सुंदर। रचे कँगूरा रंग रंग बर॥ २॥

[दिव्य] स्वर्ण और रत्नोंसे बनी हुई अटारियाँ हैं। उनमें [मणि-रत्नोंकी] अनेक रंगोंकी सुन्दर ढली हुई फर्शें हैं। नगरके चारों ओर अत्यन्त सुन्दर परकोटा बना है, जिसपर सुन्दर रंग-बिरंगे कँगूरे बने हैं॥ २॥

नव ग्रह निकर अनीक बनाई। जनु घेरी अमरावति आई॥
महि बहु रंग रचित गच काँचा। जो बिलोकि मुनिबर मन नाचा॥ ३॥

मानो नवग्रहोंने बड़ी भारी सेना बनाकर अमरावतीको आकर घेर लिया हो। पृथ्वी (सड़कों) पर अनेकों रंगोंके (दिव्य) काँचों (रत्नों) की गच बनायी (ढाली) गयी है, जिसे देखकर श्रेष्ठ मुनियोंके भी मन नाच उठते हैं॥ ३॥

धवल धाम ऊपर नभ चुंबत। कलस मनहुँ रबि ससि दुति निंदत॥
बहु मनि रचित झरोखा भ्राजहिं। गृह गृह प्रति मनि दीप बिराजहिं॥ ४॥

उज्ज्वल महल ऊपर आकाशको चूम (छू) रहे हैं। महलोंपरके कलश [अपने दिव्य प्रकाशसे] मानो सूर्य, चन्द्रमाके प्रकाशकी भी निन्दा (तिरस्कार) करते हैं। [महलोंमें] बहुत-सी मणियोंसे रचे हुए झरोखे सुशोभित हैं और घर-घरमें मणियोंके

दीपक शोभा पा रहे हैं॥ ४॥

छं०—**मनि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरीं बिद्रुम रची।**
मनि खंभ भीति बिरंचि बिरची कनक मनि मरकत खची॥
सुंदर मनोहर मंदिरायत अजिर रुचिर फटिक रचे।
प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि खचे॥

घरोंमें मणियोंके दीपक शोभा दे रहे हैं। मूँगोंकी बनी हुई देहलियाँ चमक रही हैं। मणियों (रत्नों)के खम्भे हैं। मरकतमणियों (पन्नों) से जड़ी हुई सोनेकी दीवारें ऐसी सुन्दर हैं मानो ब्रह्माने खास तौरसे बनायी हों। महल सुन्दर, मनोहर और विशाल हैं। उनमें सुन्दर स्फटिकके आँगन बने हैं। प्रत्येक द्वारपर बहुत-से खरादे हुए हीरोंसे जड़े हुए सोनेके किंवाड़ हैं।

दो०—**चारु चित्रसाला गृह गृह प्रति लिखे बनाइ।**
राम चरित जे निरख मुनि ते मन लेहिं चोराइ॥ २७॥

घर-घरमें सुन्दर चित्रशालाएँ हैं, जिनमें श्रीरामजीके चरित्र बड़ी सुन्दरताके साथ सँवारकर अङ्कित किये हुए हैं। जिन्हें मुनि देखते हैं, तो वे उनके भी चित्तको चुरा लेते हैं॥ २७॥

चौ०—**सुमन बाटिका सबहिं लगाईं। बिबिध भाँति करि जतन बनाईं॥**
लता ललित बहु जाति सुहाईं। फूलहिं सदा बसंत कि नाईं॥ १॥

सभी लोगोंने भिन्न-भिन्न प्रकारकी पुष्पोंकी वाटिकाएँ यत्न करके लगा रखी हैं, जिनमें बहुत जातियोंकी सुन्दर और ललित लताएँ सदा वसन्तकी तरह फूलती रहती हैं॥ १॥

गुंजत मधुकर मुखर मनोहर। मारुत त्रिबिधि सदा बह सुंदर॥
नाना खग बालकन्हि जिआए। बोलत मधुर उड़ात सुहाए॥ २॥

भौंरे मनोहर स्वरसे गुञ्जार करते हैं। सदा तीनों प्रकारकी सुन्दर वायु बहती रहती है। बालकोंने बहुत-से पक्षी पाल रखे हैं, जो मधुर बोली बोलते हैं और उड़नेमें सुन्दर लगते हैं॥ २॥

मोर हंस सारस पारावत। भवननि पर सोभा अति पावत॥
जहँ तहँ देखहिं निज परिछाहीं। बहु बिधि कूजहिं नृत्य कराहीं॥ ३॥

मोर, हंस, सारस और कबूतर घरोंके ऊपर बड़ी ही शोभा पाते हैं। वे पक्षी [मणियोंकी दीवारोंमें और छतमें] जहाँ-तहाँ अपनी परछाईं देखकर [वहाँ दूसरे पक्षी समझकर] बहुत प्रकारसे मधुर बोली बोलते और नृत्य करते हैं॥ ३॥

सुक सारिका पढ़ावहिं बालक। कहहु राम रघुपति जनपालक॥
राज दुआर सकल बिधि चारू। बीथीं चौहट रुचिर बजारू॥ ४॥

बालक तोता-मैनाको पढ़ाते हैं कि कहो—'राम' 'रघुपति' 'जनपालक'। राजद्वार सब प्रकारसे सुन्दर है। गलियाँ, चौराहे और बाजार सभी सुन्दर हैं॥ ४॥

छं०—**बाजार रुचिर न बनइ बरनत बस्तु बिनु गथ पाइए।**
जहँ भूप रमानिवास तहँ की संपदा किमि गाइए॥

बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते।
सब सुखी सब सच्चरित सुंदर नारि नर सिसु जरठ जे॥

सुन्दर बाजार है, जो वर्णन करते नहीं बनता; वहाँ वस्तुएँ बिना ही मूल्य मिलती हैं। जहाँ स्वयं लक्ष्मीपति राजा हों, वहाँकी सम्पत्तिका वर्णन कैसे किया जाय? बजाज (कपड़ेका व्यापार करनेवाले), सराफ (रुपये-पैसेका लेन-देन करनेवाले) आदि वणिक् (व्यापारी) बैठे हुए ऐसे जान पड़ते हैं मानो अनेक कुबेर हों। स्त्री, पुरुष, बच्चे और बूढ़े जो भी हैं, सभी सुखी, सदाचारी और सुन्दर हैं।

दो०—उत्तर दिसि सरजू बह निर्मल जल गंभीर।
बाँधे घाट मनोहर स्वल्प पंक नहिं तीर॥ २८॥

नगरके उत्तर दिशामें सरयूजी बह रही हैं, जिनका जल निर्मल और गहरा है। मनोहर घाट बँधे हुए हैं, किनारेपर जरा भी कीचड़ नहीं है॥ २८॥

चौ०—दूरि फराक रुचिर सो घाटा। जहँ जल पिअहिं बाजि गज ठाटा॥
पनिघट परम मनोहर नाना। तहाँ न पुरुष करहिं अस्नाना॥ १॥

अलग कुछ दूरीपर वह सुन्दर घाट है, जहाँ घोड़ों और हाथियोंके ठट्ट-के-ठट्ट जल पिया करते हैं। पानी भरनेके लिये बहुत-से [जनाने] घाट हैं, जो बड़े ही मनोहर हैं। वहाँ पुरुष स्नान नहीं करते॥ १॥

राजघाट सब बिधि सुंदर बर। मज्जहिं तहाँ बरन चारिउ नर॥
तीर तीर देवन्ह के मंदिर। चहुँ दिसि तिन्ह के उपबन सुंदर॥ २॥

राजघाट सब प्रकारसे सुन्दर और श्रेष्ठ है, जहाँ चारों वर्णोंके पुरुष स्नान करते हैं। सरयूजीके किनारे-किनारे देवताओंके मन्दिर हैं, जिनके चारों ओर सुन्दर उपवन (बगीचे) हैं॥ २॥

कहुँ कहुँ सरिता तीर उदासी। बसहिं ग्यान रत मुनि संन्यासी॥
तीर तीर तुलसिका सुहाई। बृंद बृंद बहु मुनिन्ह लगाई॥ ३॥

नदीके किनारे कहीं-कहीं विरक्त और ज्ञानपरायण, मुनि और संन्यासी निवास करते हैं। सरयूजीके किनारे-किनारे सुन्दर तुलसीजीके झुंड-के-झुंड बहुत-से पेड़ मुनियोंने लगा रखे हैं॥ ३॥

पुर सोभा कछु बरनि न जाई। बाहेर नगर परम रुचिराई॥
देखत पुरी अखिल अघ भागा। बन उपबन बापिका तड़ागा॥ ४॥

नगरकी शोभा तो कुछ कही नहीं जाती। नगरके बाहर भी परम सुन्दरता है। श्रीअयोध्यापुरीके दर्शन करते ही सम्पूर्ण पाप भाग जाते हैं। [वहाँ] वन, उपवन, बावलियाँ और तालाब सुशोभित हैं॥ ४॥

छं०—बापीं तड़ाग अनूप कूप मनोहरायत सोहहीं।
सोपान सुंदर नीर निर्मल देखि सुर मुनि मोहहीं॥
बहु रंग कंज अनेक खग कूजहिं मधुप गुंजारहीं।
आराम रम्य पिकादि खग रव जनु पथिक हंकारहीं॥

अनुपम बावलियाँ, तालाब और मनोहर तथा विशाल कुएँ शोभा दे रहे हैं, जिनकी सुन्दर [रत्नोंकी] सीढ़ियाँ और निर्मल जल देखकर देवता और मुनितक मोहित हो जाते हैं। [तालाबोंमें] अनेक रंगोंके कमल खिल रहे हैं, अनेकों पक्षी कूज रहे हैं और भौंरे गुञ्जार कर रहे हैं। [परम] रमणीय बगीचे कोयल आदि पक्षियोंकी [सुन्दर बोलीसे] मानो राह चलनेवालोंको बुला रहे हैं।

दो०—रमानाथ जहँ राजा सो पुर बरनि कि जाइ।
अनिमादिक सुख संपदा रहीं अवध सब छाइ॥ २९॥

स्वयं लक्ष्मीपति भगवान् जहाँ राजा हों, उस नगरका कहीं वर्णन किया जा सकता है? अणिमा आदि आठों सिद्धियाँ और समस्त सुख-सम्पत्तियाँ अयोध्यामें छा रही हैं॥ २९॥

चौ०—जहँ तहँ नर रघुपति गुन गावहिं। बैठि परसपर इहइ सिखावहिं॥
भजहु प्रनत प्रतिपालक रामहि। सोभा सील रूप गुन धामहि॥ १॥

लोग जहाँ-तहाँ श्रीरघुनाथजीके गुण गाते हैं और बैठकर एक-दूसरेको यही सीख देते हैं कि शरणागतका पालन करनेवाले श्रीरामजीको भजो; शोभा, शील, रूप और गुणोंके धाम श्रीरघुनाथजीको भजो॥ १॥

जलज बिलोचन स्यामल गातहि। पलक नयन इव सेवक त्रातहि॥
धृत सर रुचिर चाप तूनीरहि। संत कंज बन रबि रनधीरहि॥ २॥

कमलनयन और साँवले शरीरवालेको भजो। पलक जिस प्रकार नेत्रोंकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार अपने सेवकोंकी रक्षा करनेवालेको भजो। सुन्दर बाण, धनुष और तरकस धारण करनेवालेको भजो। संतरूपी कमलवनके [खिलानेके] लिये सूर्यरूप रणधीर श्रीरामजीको भजो॥ २॥

काल कराल ब्याल खगराजहि। नमत राम अकाम ममता जहि॥
लोभ मोह मृगजूथ किरातहि। मनसिज करि हरि जन सुखदातहि॥ ३॥

कालरूपी भयानक सर्पके भक्षण करनेवाले श्रीरामरूप गरुड़जीको भजो। निष्कामभावसे प्रणाम करते ही ममताका नाश कर देनेवाले श्रीरामजीको भजो। लोभ-मोहरूपी हरिनोंके समूहके नाश करनेवाले श्रीरामरूप किरातको भजो। कामदेवरूपी हाथीके लिये सिंहरूप तथा सेवकोंको सुख देनेवाले श्रीरामजीको भजो॥ ३॥

संसय सोक निबिड़ तम भानुहि। दनुज गहन घन दहन कृसानुहि॥
जनकसुता समेत रघुबीरहि। कस न भजहु भंजन भव भीरहि॥ ४॥

संशय और शोकरूपी घने अन्धकारके नाश करनेवाले श्रीरामरूप सूर्यको भजो। राक्षसरूपी घने वनको जलानेवाले श्रीरामरूप अग्निको भजो। जन्म-मृत्युके भयको नाश करनेवाले श्रीजानकीजीसमेत श्रीरघुवीरको क्यों नहीं भजते?॥ ४॥

बहु बासना मसक हिम रासिहि। सदा एकरस अज अबिनासिहि॥
मुनि रंजन भंजन महि भारहि। तुलसिदास के प्रभुहि उदारहि॥ ५॥

बहुत-सी वासनाओंरूपी मच्छरोंको नाश करनेवाले श्रीरामरूप हिमराशि (बर्फके ढेर) को भजो। नित्य एकरस, अजन्मा और अविनाशी श्रीरघुनाथजीको भजो। मुनियोंको

आनन्द देनेवाले, पृथ्वीका भार उतारनेवाले और तुलसीदासके उदार (दयालु) स्वामी श्रीरामजीको भजो॥ ५॥

दो०—एहि बिधि नगर नारि नर करहिं राम गुन गान।
सानुकूल सब पर रहहिं संतत कृपानिधान॥ ३०॥

इस प्रकार नगरके स्त्री-पुरुष श्रीरामजीका गुण-गान करते हैं और कृपानिधान श्रीरामजी सदा सबपर अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं॥ ३०॥

चौ०—जब ते राम प्रताप खगेसा। उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा॥
पूरि प्रकास रहेउ तिहुँ लोका। बहुतेन्ह सुख बहुतन मन सोका॥ १॥

[काकभुशुण्डिजी कहते हैं—] हे पक्षिराज गरुड़जी! जबसे रामप्रतापरूपी अत्यन्त प्रचण्ड सूर्य उदित हुआ, तबसे तीनों लोकोंमें पूर्ण प्रकाश भर गया है। इससे बहुतोंको सुख और बहुतोंके मनमें शोक हुआ॥ १॥

जिन्हहि सोक ते कहउँ बखानी। प्रथम अबिद्या निसा नसानी॥
अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने। काम क्रोध कैरव सकुचाने॥ २॥

जिन-जिनको शोक हुआ, उन्हें मैं बखानकर कहता हूँ। [सर्वत्र प्रकाश छा जानेसे] पहले तो अविद्यारूपी रात्रि नष्ट हो गयी। पापरूपी उल्लू जहाँ-तहाँ छिप गये और काम-क्रोधरूपी कुमुद मुँद गये॥ २॥

बिबिध कर्म गुन काल सुभाऊ। ए चकोर सुख लहहिं न काऊ॥
मत्सर मान मोह मद चोरा। इन्ह कर हुनर न कवनिहुँ ओरा॥ ३॥

भाँति-भाँतिके [बन्धनकारक] कर्म, गुण, काल और स्वभाव—ये चकोर हैं, जो [रामप्रतापरूपी सूर्यके प्रकाशमें] कभी सुख नहीं पाते। मत्सर (डाह), मान, मोह और मदरूपी जो चोर हैं, उनका हुनर (कला) भी किसी ओर नहीं चल पाता॥ ३॥

धरम तड़ाग ग्यान बिग्याना। ए पंकज बिकसे बिधि नाना॥
सुख संतोष बिराग बिबेका। बिगत सोक ए कोक अनेका॥ ४॥

धर्मरूपी तालाबमें ज्ञान, विज्ञान ये अनेकों प्रकारके कमल खिल उठे। सुख, सन्तोष, वैराग्य और विवेक—ये अनेकों चकवे शोकरहित हो गये॥ ४॥

दो०—यह प्रताप रबि जाकें उर जब करइ प्रकास।
पछिले बाढ़हिं प्रथम जे कहे ते पावहिं नास॥ ३१॥

यह श्रीरामप्रतापरूपी सूर्य जिसके हृदयमें जब प्रकाश करता है, तब जिनका वर्णन पीछेसे किया गया है, वे (धर्म, ज्ञान, विज्ञान, सुख, सन्तोष, वैराग्य और विवेक) बढ़ जाते हैं और जिनका वर्णन पहले किया गया है, वे (अविद्या, पाप, काम, क्रोध, कर्म, काल, गुण, स्वभाव आदि) नाशको प्राप्त होते (नष्ट हो जाते) हैं॥ ३१॥

चौ०—भ्रातन्ह सहित रामु एक बारा। संग परम प्रिय पवनकुमारा॥
सुंदर उपबन देखन गए। सब तरु कुसुमित पल्लव नए॥ १॥

एक बार भाइयोंसहित श्रीरामचन्द्रजी परम प्रिय हनुमान्‌जीको साथ लेकर सुन्दर उपवन देखने गये। वहाँके सब वृक्ष फूले हुए और नये पत्तोंसे युक्त थे॥ १॥

जानि समय सनकादिक आए। तेज पुंज गुन सील सुहाए॥
ब्रह्मानंद सदा लयलीना। देखत बालक बहुकालीना॥ २॥

सुअवसर जानकर सनकादि मुनि आये, जो तेजके पुञ्ज, सुन्दर गुण और शीलसे युक्त तथा सदा ब्रह्मानन्दमें लवलीन रहते हैं। देखनेमें तो वे बालक लगते हैं, परन्तु हैं बहुत समयके॥ २॥

रूप धरें जनु चारिउ बेदा। समदरसी मुनि बिगत बिभेदा॥
आसा बसन ब्यसन यह तिन्हहीं। रघुपति चरित होइ तहँ सुनहीं॥ ३॥

मानो चारों वेद ही बालकरूप धारण किये हों। वे मुनि समदर्शी और भेदरहित हैं। दिशाएँ ही उनके वस्त्र हैं। उनके एक ही व्यसन है कि जहाँ श्रीरघुनाथजीकी चरित्र-कथा होती है वहाँ जाकर वे उसे अवश्य सुनते हैं॥ ३॥

तहाँ रहे सनकादि भवानी। जहँ घटसंभव मुनिबर ग्यानी॥
राम कथा मुनिबर बहु बरनी। ग्यान जोनि पावक जिमि अरनी॥ ४॥

[शिवजी कहते हैं—] हे भवानी! सनकादि मुनि वहाँ गये थे (वहींसे चले आ रहे थे) जहाँ ज्ञानी मुनिश्रेष्ठ श्रीअगस्त्यजी रहते थे। श्रेष्ठ मुनिने श्रीरामजीकी बहुत-सी कथाएँ वर्णन की थीं, जो ज्ञान उत्पन्न करनेमें उसी प्रकार समर्थ हैं जैसे अरणि लकड़ीसे अग्नि उत्पन्न होती है॥ ४॥

दो०—देखि राम मुनि आवत हरषि दंडवत कीन्ह।
स्वागत पूँछि पीत पट प्रभु बैठन कहँ दीन्ह॥ ३२॥

सनकादि मुनियोंको आते देखकर श्रीरामचन्द्रजीने हर्षित होकर दण्डवत् की और स्वागत (कुशल) पूछकर प्रभुने [उनके] बैठनेके लिये अपना पीताम्बर बिछा दिया॥ ३२॥

चौ०—कीन्ह दंडवत तीनिउँ भाई। सहित पवनसुत सुख अधिकाई॥
मुनि रघुपति छबि अतुल बिलोकी। भए मगन मन सके न रोकी॥ १॥

फिर हनुमान्‌जीसहित तीनों भाइयोंने दण्डवत् की; सबको बड़ा सुख हुआ। मुनि श्रीरघुनाथजीकी अतुलनीय छवि देखकर उसीमें मग्न हो गये। वे मनको रोक न सके॥ १॥

स्यामल गात सरोरुह लोचन। सुंदरता मंदिर भव मोचन॥
एकटक रहे निमेष न लावहिं। प्रभु कर जोरें सीस नवावहिं॥ २॥

वे जन्म-मृत्यु [के चक्र] से छुड़ानेवाले, श्यामशरीर, कमलनयन, सुन्दरताके धाम श्रीरामजीको टकटकी लगाये देखते ही रह गये, पलक नहीं मारते। और प्रभु हाथ जोड़े सिर नवा रहे हैं॥ २॥

तिन्ह कै दसा देखि रघुबीरा। स्रवत नयन जल पुलक सरीरा॥
कर गहि प्रभु मुनिबर बैठारे। परम मनोहर बचन उचारे॥ ३॥

उनकी [प्रेमविह्वल] दशा देखकर [उन्हींकी भाँति] श्रीरघुनाथजीके नेत्रोंसे भी [प्रेमाश्रुओंका] जल बहने लगा और शरीर पुलकित हो गया। तदनन्तर प्रभुने हाथ पकड़कर श्रेष्ठ मुनियोंको बैठाया और परम मनोहर वचन कहे—॥ ३॥

आजु धन्य मैं सुनहु मुनीसा। तुम्हरें दरस जाहिं अघ खीसा॥
बड़े भाग पाइब सतसंगा। बिनहिं प्रयास होहिं भव भंगा॥ ४॥

हे मुनीश्वरो! सुनिये, आज मैं धन्य हूँ। आपके दर्शनोंहीसे [सारे] पाप नष्ट हो जाते हैं। बड़े ही भाग्यसे सत्संगकी प्राप्ति होती है, जिससे बिना ही परिश्रम जन्म-मृत्युका चक्र नष्ट हो जाता है॥ ४॥

दो०—संत संग अपबर्ग कर कामी भव कर पंथ।
कहहिं संत कबि कोबिद श्रुति पुरान सदग्रंथ॥ ३३॥

संतका संग मोक्ष (भव-बन्धनसे छूटने) का और कामीका संग जन्म-मृत्युके बन्धनमें पड़नेका मार्ग है। संत, कवि और पण्डित तथा वेद-पुराण [आदि] सभी सद्ग्रन्थ ऐसा कहते हैं॥ ३३॥

चौ०—सुनि प्रभु बचन हरषि मुनि चारी। पुलकित तन अस्तुति अनुसारी॥
जय भगवंत अनंत अनामय। अनघ अनेक एक करुनामय॥ १॥

प्रभुके वचन सुनकर चारों मुनि हर्षित होकर, पुलकित शरीरसे स्तुति करने लगे—हे भगवन्! आपकी जय हो। आप अन्तरहित, विकाररहित, पापरहित, अनेक (सब रूपोंमें प्रकट), एक (अद्वितीय) और करुणामय हैं॥ १॥

जय निर्गुन जय जय गुन सागर। सुख मंदिर सुंदर अति नागर॥
जय इंदिरा रमन जय भूधर। अनुपम अज अनादि सोभाकर॥ २॥

हे निर्गुण! आपकी जय हो। हे गुणके समुद्र! आपकी जय हो, जय हो। आप सुखके धाम, [अत्यन्त] सुन्दर और अति चतुर हैं। हे लक्ष्मीपति! आपकी जय हो। हे पृथ्वीके धारण करनेवाले! आपकी जय हो। आप उपमारहित, अजन्मा, अनादि और शोभाकी खान हैं॥ २॥

ग्यान निधान अमान मानप्रद। पावन सुजस पुरान बेद बद॥
तग्य कृतग्य अग्यता भंजन। नाम अनेक अनाम निरंजन॥ ३॥

आप ज्ञानके भण्डार, [स्वयं] मानरहित और [दूसरोंको] मान देनेवाले हैं। वेद और पुराण आपका पावन सुन्दर यश गाते हैं। आप तत्त्वके जाननेवाले, की हुई सेवाको माननेवाले और अज्ञानका नाश करनेवाले हैं। हे निरञ्जन (मायारहित)! आपके अनेकों (अनन्त) नाम हैं और कोई नाम नहीं है (अर्थात् आप सब नामोंके परे हैं)॥ ३॥

सर्ब सर्बगत सर्ब उरालय। बससि सदा हम कहुँ परिपालय॥
द्वंद बिपति भव फंद बिभंजय। हृदि बसि राम काम मद गंजय॥ ४॥

आप सर्वरूप हैं, सबमें व्याप्त हैं और सबके हृदयरूपी घरमें सदा निवास करते हैं; [अतः] आप हमारा परिपालन कीजिये। [राग-द्वेष, अनुकूलता-प्रतिकूलता, जन्म-मृत्यु आदि] द्वन्द्व, विपत्ति और जन्म-मृत्युके जालको काट दीजिये। हे रामजी! आप हमारे हृदयमें बसकर काम और मदका नाश कर दीजिये॥ ४॥

दो०—परमानंद कृपायतन मन परिपूरन काम।
प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम॥ ३४॥

आप परमानन्दस्वरूप, कृपाके धाम और मनकी कामनाओंको परिपूर्ण करनेवाले हैं। हे श्रीरामजी! हमको अपनी अविचल प्रेमा-भक्ति दीजिये॥ ३४॥

चौ०—देहु भगति रघुपति अति पावनि। त्रिबिधि ताप भव दाप नसावनि॥
प्रनत काम सुरधेनु कलपतरु। होइ प्रसन्न दीजै प्रभु यह बरु॥ १॥

हे रघुनाथजी! आप हमें अपनी अत्यन्त पवित्र करनेवाली और तीनों प्रकारके तापों और जन्म-मरणके क्लेशोंका नाश करनेवाली भक्ति दीजिये। हे शरणागतोंकी कामना पूर्ण करनेके लिये कामधेनु और कल्पवृक्षरूप प्रभो! प्रसन्न होकर हमें यही वर दीजिये॥ १॥

भव बारिधि कुंभज रघुनायक। सेवत सुलभ सकल सुख दायक॥
मन संभव दारुन दुख दारय। दीनबंधु समता बिस्तारय॥ २॥

हे रघुनाथजी! आप जन्म-मृत्युरूप समुद्रको सोखनेके लिये अगस्त्य मुनिके समान हैं। आप सेवा करनेमें सुलभ हैं तथा सब सुखोंके देनेवाले हैं। हे दीनबन्धो! मनसे उत्पन्न दारुण दुःखोंका नाश कीजिये और [हममें] समदृष्टिका विस्तार कीजिये॥ २॥

आस त्रास इरिषादि निवारक। बिनय बिबेक बिरति बिस्तारक॥
भूप मौलि मनि मंडन धरनी। देहि भगति संसृति सरि तरनी॥ ३॥

आप [विषयोंकी] आशा, भय और ईर्ष्या आदिके निवारण करनेवाले हैं तथा विनय, विवेक और वैराग्यके विस्तार करनेवाले हैं। हे राजाओंके शिरोमणि एवं पृथ्वीके भूषण श्रीरामजी! संसृति (जन्म-मृत्युके प्रवाह) रूपी नदीके लिये नौकारूप अपनी भक्ति प्रदान कीजिये॥ ३॥

मुनि मन मानस हंस निरंतर। चरन कमल बंदित अज संकर॥
रघुकुल केतु सेतु श्रुति रच्छक। काल करम सुभाउ गुन भच्छक॥ ४॥

हे मुनियोंके मनरूपी मानसरोवरमें निरन्तर निवास करनेवाले हंस! आपके चरणकमल ब्रह्माजी और शिवजीके द्वारा वन्दित हैं। आप रघुकुलके केतु, वेदमर्यादाके रक्षक और काल, कर्म, स्वभाव तथा गुण [रूप बन्धनों] के भक्षक (नाशक) हैं॥ ४॥

तारन तरन हरन सब दूषन। तुलसिदास प्रभु त्रिभुवन भूषन॥ ५॥

आप तरन-तारन (स्वयं तरे हुए और दूसरोंको तारनेवाले) तथा सब दोषोंको हरनेवाले हैं। तीनों लोकोंके विभूषण आप ही तुलसीदासके स्वामी हैं॥ ५॥

दो०—बार-बार अस्तुति करि प्रेम सहित सिरु नाइ।
ब्रह्म भवन सनकादि गे अति अभीष्ट बर पाइ॥ ३५॥

प्रेमसहित बार-बार स्तुति करके और सिर नवाकर तथा अपना अत्यन्त मनचाहा वर पाकर सनकादि मुनि ब्रह्मलोकको गये॥ ३५॥

चौ०—सनकादिक बिधि लोक सिधाए। भ्रातन्ह राम चरन सिरु नाए॥
पूछत प्रभुहि सकल सकुचाहीं। चितवहिं सब मारुतसुत पाहीं॥ १॥

सनकादि मुनि ब्रह्मलोकको चले गये। तब भाइयोंने श्रीरामजीके चरणोंमें सिर नवाया। सब भाई प्रभुसे पूछते सकुचाते हैं। [इसलिये] सब हनुमान्‌जीकी ओर देख रहे हैं॥ १॥

सुनी चहहिं प्रभु मुख कै बानी। जो सुनि होइ सकल भ्रम हानी॥
अंतरजामी प्रभु सभ जाना। बूझत कहहु काह हनुमाना॥ २॥

वे प्रभुके श्रीमुखकी वाणी सुनना चाहते हैं, जिसे सुनकर सारे भ्रमोंका नाश हो जाता है। अन्तर्यामी प्रभु सब जान गये और पूछने लगे—कहो हनुमान्! क्या बात है?॥ २॥

जोरि पानि कह तब हनुमंता। सुनहु दीनदयाल भगवंता॥
नाथ भरत कछु पूँछन चहहीं। प्रस्न करत मन सकुचत अहहीं॥ ३॥

तब हनुमान्‌जी हाथ जोड़कर बोले—हे दीनदयालु भगवान्! सुनिये। हे नाथ! भरतजी कुछ पूछना चाहते हैं, पर प्रश्न करते मनमें सकुचा रहे हैं॥ ३॥

तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊ। भरतहि मोहि कछु अंतर काऊ॥
सुनि प्रभु बचन भरत गहे चरना। सुनहु नाथ प्रनतारति हरना॥ ४॥

[भगवान्‌ने कहा—] हनुमान्! तुम तो मेरा स्वभाव जानते ही हो। भरतके और मेरे बीचमें कभी भी कोई अन्तर (भेद) है? प्रभुके वचन सुनकर भरतजीने उनके चरण पकड़ लिये [और कहा—] हे नाथ! हे शरणागतके दु:खोंको हरनेवाले! सुनिये॥ ४॥

दो०—नाथ न मोहि संदेह कछु सपनेहुँ सोक न मोह।
केवल कृपा तुम्हारिहि कृपानंद संदोह॥ ३६॥

हे नाथ! न तो मुझे कुछ सन्देह है और न स्वप्नमें भी शोक और मोह है। हे कृपा और आनन्दके समूह! यह केवल आपकी ही कृपाका फल है॥ ३६॥

चौ०—करउँ कृपानिधि एक ढिठाई। मैं सेवक तुम्ह जन सुखदाई॥
संतन्ह कै महिमा रघुराई। बहु बिधि बेद पुरानन्ह गाई॥ १॥

तथापि हे कृपानिधान! मैं आपसे एक धृष्टता करता हूँ। मैं सेवक हूँ और आप सेवकको सुख देनेवाले हैं [इससे मेरी धृष्टताको क्षमा कीजिये और मेरे प्रश्नका उत्तर देकर सुख दीजिये]। हे रघुनाथजी! वेद-पुराणोंने संतोंकी महिमा बहुत प्रकारसे गायी है॥ १॥

श्रीमुख तुम्ह पुनि कीन्हि बड़ाई। तिन्ह पर प्रभुहि प्रीति अधिकाई॥
सुना चहउँ प्रभु तिन्ह कर लच्छन। कृपासिंधु गुन ग्यान बिचच्छन॥ २॥

आपने भी अपने श्रीमुखसे उनकी बड़ाई की है और उनपर प्रभु (आप) का प्रेम भी बहुत है। हे प्रभो! मैं उनके लक्षण सुनना चाहता हूँ। आप कृपाके समुद्र हैं और गुण तथा ज्ञानमें अत्यन्त निपुण हैं॥ २॥

संत असंत भेद बिलगाई। प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई॥
संतन्ह के लच्छन सुनु भ्राता। अगनित श्रुति पुरान बिख्याता॥ ३॥

हे शरणागतका पालन करनेवाले! संत और असंतके भेद अलग-अलग करके मुझको समझाकर कहिये। [श्रीरामजीने कहा—] हे भाई! संतोंके लक्षण (गुण) असंख्य हैं, जो वेद और पुराणोंमें प्रसिद्ध हैं॥ ३॥

संत असंतन्हि कै असि करनी। जिमि कुठार चंदन आचरनी॥
काटइ परसु मलय सुनु भाई। निज गुन देइ सुगंध बसाई॥ ४॥

संत और असंतोंकी करनी ऐसी है, जैसे कुल्हाड़ी और चन्दनका आचरण होता

है। हे भाई! सुनो, कुल्हाड़ी चन्दनको काटती है [क्योंकि उसका स्वभाव या काम ही वृक्षोंको काटना है]; किन्तु चन्दन [अपने स्वभाववश] अपना गुण देकर उसे (काटनेवाली कुल्हाड़ीको) सुगन्धसे सुवासित कर देता है॥ ४॥

दो०—ताते सुर सीसन्ह चढ़त जग बल्लभ श्रीखंड।
अनल दाहि पीटत घनहिं परसु बदन यह दंड॥ ३७॥

इसी गुणके कारण चन्दन देवताओंके सिरोंपर चढ़ता है और जगत्का प्रिय हो रहा है और कुल्हाड़ीके मुखको यह दण्ड मिलता है कि उसको आगमें जलाकर फिर घनसे पीटते हैं॥ ३७॥

चौ०—बिषय अलंपट सील गुनाकर। पर दुख दुख सुख सुख देखे पर॥
सम अभूतरिपु बिमद बिरागी। लोभामरष हरष भय त्यागी॥ १॥

संत विषयोंमें लम्पट (लिप्त) नहीं होते, शील और सद्गुणोंकी खान होते हैं। उन्हें पराया दुःख देखकर दुःख और सुख देखकर सुख होता है। वे [सबमें, सर्वत्र, सब समय] समता रखते हैं, उनके मन कोई उनका शत्रु नहीं है, वे मदसे रहित और वैराग्यवान् होते हैं तथा लोभ, क्रोध, हर्ष और भयका त्याग किये हुए रहते हैं॥ १॥

कोमलचित दीनन्ह पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया॥
सबहि मानप्रद आपु अमानी। भरत प्रान सम मम ते प्रानी॥ २॥

उनका चित्त बड़ा कोमल होता है। वे दीनोंपर दया करते हैं तथा मन, वचन और कर्मसे मेरी निष्कपट (विशुद्ध) भक्ति करते हैं। सबको सम्मान देते हैं, पर स्वयं मानरहित होते हैं। हे भरत! वे प्राणी (संतजन) मेरे प्राणोंके समान हैं॥ २॥

बिगत काम मम नाम परायन। सांति बिरति बिनती मुदितायन॥
सीतलता सरलता मयत्री। द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री॥ ३॥

उनको कोई कामना नहीं होती। वे मेरे नामके परायण होते हैं। शान्ति, वैराग्य, विनय और प्रसन्नताके घर होते हैं। उनमें शीतलता, सरलता, सबके प्रति मित्रभाव और ब्राह्मणके चरणोंमें प्रीति होती है, जो धर्मोंको उत्पन्न करनेवाली है॥ ३॥

ए सब लच्छन बसहिं जासु उर। जानेहु तात संत संतत फुर॥
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं। परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं॥ ४॥

हे तात! ये सब लक्षण जिसके हृदयमें बसते हों, उसको सदा सच्चा संत जानना। जो शम (मनके निग्रह), दम (इन्द्रियोंके निग्रह), नियम और नीतिसे कभी विचलित नहीं होते और मुखसे कभी कठोर वचन नहीं बोलते;॥ ४॥

दो०—निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय गुन मंदिर सुख पुंज॥ ३८॥

जिन्हें निन्दा और स्तुति (बड़ाई) दोनों समान हैं और मेरे चरणकमलोंमें जिनकी ममता है, वे गुणोंके धाम और सुखकी राशि संतजन मुझे प्राणोंके समान प्रिय हैं॥ ३८॥

चौ०—सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ। भूलेहुँ संगति करिअ न काऊ॥
तिन्ह कर संग सदा दुखदाई। जिमि कपिलहि घालइ हरहाई॥ १॥

अब असंतों (दुष्टों) का स्वभाव सुनो; कभी भूलकर भी उनकी संगति नहीं करनी चाहिये। उनका संग सदा दुःख देनेवाला होता है। जैसे हरहाई (बुरी जातिकी) गाय कपिला (सीधी और दुधार) गायको अपने संगसे नष्ट कर डालती है॥ १॥

खलन्ह हृदयँ अति ताप बिसेषी। जरहिं सदा पर संपति देखी॥
जहँ कहुँ निंदा सुनहिं पराई। हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई॥ २॥

दुष्टोंके हृदयमें बहुत अधिक संताप रहता है। वे परायी सम्पत्ति (सुख) देखकर सदा जलते रहते हैं। वे जहाँ कहीं दूसरेकी निन्दा सुन पाते हैं, वहाँ ऐसे हर्षित होते हैं मानो रास्तेमें पड़ी निधि (खजाना) पा ली हो॥ २॥

काम क्रोध मद लोभ परायन। निर्दय कपटी कुटिल मलायन॥
बयरु अकारन सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहू सों॥ ३॥

वे काम, क्रोध, मद और लोभके परायण तथा निर्दयी, कपटी, कुटिल और पापोंके घर होते हैं। वे बिना ही कारण सब किसीसे वैर किया करते हैं। जो भलाई करता है उसके साथ भी बुराई करते हैं॥ ३॥

झूठइ लेना झूठइ देना। झूठइ भोजन झूठ चबेना॥
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा। खाइ महा अहि हृदय कठोरा॥ ४॥

उनका झूठा ही लेना और झूठा ही देना होता है। झूठा ही भोजन होता है और झूठा ही चबेना होता है। (अर्थात् वे लेने-देनेके व्यवहारमें झूठका आश्रय लेकर दूसरोंका हक मार लेते हैं अथवा झूठी डींग हाँका करते हैं कि हमने लाखों रुपये ले लिये, करोड़ोंका दान कर दिया। इसी प्रकार खाते हैं चनेकी रोटी और कहते हैं कि आज खूब माल खाकर आये। अथवा चबेना चबाकर रह जाते हैं और कहते हैं हमें बढ़िया भोजनसे वैराग्य है, इत्यादि। मतलब यह कि वे सभी बातोंमें झूठ ही बोला करते हैं।) जैसे मोर [बहुत मीठा बोलता है, परन्तु उस] का हृदय ऐसा कठोर होता है कि वह महान् विषैले साँपोंको भी खा जाता है। वैसे ही वे भी ऊपरसे मीठे वचन बोलते हैं [परन्तु हृदयके बड़े ही निर्दयी होते हैं]॥ ४॥

दो०—पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपबाद।
ते नर पाँवर पापमय देह धरें मनुजाद॥ ३९॥

वे दूसरोंसे द्रोह करते हैं और परायी स्त्री, पराये धन तथा परायी निन्दामें आसक्त रहते हैं। वे पामर और पापमय मनुष्य नर-शरीर धारण किये हुए राक्षस ही हैं॥ ३९॥

चौ०—लोभइ ओढ़न लोभइ डासन। सिस्नोदर पर जमपुर त्रास न॥
काहू की जौं सुनहिं बड़ाई। स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई॥ १॥

लोभ ही उनका ओढ़ना और लोभ ही बिछौना होता है (अर्थात् लोभहीसे वे सदा घिरे हुए रहते हैं)। वे पशुओंके समान आहार और मैथुनके ही परायण होते हैं, उन्हें यमपुरका भय नहीं लगता। यदि किसीकी बड़ाई सुन पाते हैं तो वे ऐसी [दुःखभरी] साँस लेते हैं मानो उन्हें जूड़ी आ गयी हो॥ १॥

जब काहू कै देखहिं बिपती। सुखी भए मानहुँ जग नृपती॥
स्वारथ रत परिवार बिरोधी। लंपट काम लोभ अति क्रोधी॥ २॥

और जब किसीकी विपत्ति देखते हैं, तब ऐसे सुखी होते हैं मानो जगत्‌भरके राजा हो गये हों। वे स्वार्थपरायण, परिवारवालोंके विरोधी, काम और लोभके कारण लम्पट और अत्यन्त क्रोधी होते हैं॥ २॥

मातु पिता गुर बिप्र न मानहिं। आपु गए अरु घालहिं आनहिं॥
करहिं मोह बस द्रोह परावा। संत संग हरि कथा न भावा॥ ३॥

वे माता, पिता, गुरु और ब्राह्मण किसीको नहीं मानते। आप तो नष्ट हुए ही रहते हैं, [साथ ही अपने सङ्गसे] दूसरोंको भी नष्ट करते हैं। मोहवश दूसरोंसे द्रोह करते हैं। उन्हें न संतोंका सङ्ग अच्छा लगता है, न भगवान्‌की कथा ही सुहाती है॥ ३॥

अवगुन सिंधु मंदमति कामी। बेद बिदूषक परधन स्वामी॥
बिप्र द्रोह पर द्रोह बिसेषा। दंभ कपट जियँ धरें सुबेषा॥ ४॥

वे अवगुणोंके समुद्र, मन्दबुद्धि, कामी (रागयुक्त), वेदोंके निन्दक और जबर्दस्ती पराये धनके स्वामी (लूटनेवाले) होते हैं। वे दूसरोंसे द्रोह तो करते ही हैं परन्तु ब्राह्मण-द्रोह विशेषतासे करते हैं। उनके हृदयमें दम्भ और कपट भरा रहता है, परन्तु वे [ऊपरसे] सुन्दर वेष धारण किये रहते हैं॥ ४॥

दो०—ऐसे अधम मनुज खल कृतजुग त्रेताँ नाहिं।
द्वापर कछुक बृंद बहु होइहहिं कलिजुग माहिं॥ ४०॥

ऐसे नीच और दुष्ट मनुष्य सत्ययुग और त्रेतामें नहीं होते। द्वापरमें थोड़े-से होंगे और कलियुगमें तो इनके झुंड-के-झुंड होंगे॥ ४०॥

चौ०—पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥
निर्नय सकल पुरान बेद कर। कहेउँ तात जानहिं कोबिद नर॥ १॥

हे भाई! दूसरोंकी भलाईके समान कोई धर्म नहीं है और दूसरोंको दुःख पहुँचानेके समान कोई नीचता (पाप) नहीं है। हे तात! समस्त पुराणों और वेदोंका यह निर्णय (निश्चित सिद्धान्त) मैंने तुमसे कहा है, इस बातको पण्डितलोग जानते हैं॥ १॥

नर सरीर धरि जे पर पीरा। करहिं ते सहहिं महा भव भीरा॥
करहिं मोह बस नर अघ नाना। स्वारथ रत परलोक नसाना॥ २॥

मनुष्यका शरीर धारण करके जो लोग दूसरोंको दुःख पहुँचाते हैं, उनको जन्म-मृत्युके महान् संकट सहने पड़ते हैं। मनुष्य मोहवश स्वार्थपरायण होकर अनेकों पाप करते हैं, इसीसे उनका परलोक नष्ट हुआ रहता है॥ २॥

कालरूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता। सुभ अरु असुभ कर्म फल दाता॥
अस बिचारि जे परम सयाने। भजहिं मोहि संसृत दुख जाने॥ ३॥

हे भाई! मैं उनके लिये कालरूप (भयंकर) हूँ, और उनके अच्छे और बुरे कर्मोंका [यथायोग्य] फल देनेवाला हूँ। ऐसा विचारकर जो लोग परम चतुर हैं, वे संसार [के प्रवाह] को दुःखरूप जानकर मुझे ही भजते हैं॥ ३॥

त्यागहिं कर्म सुभासुभ दायक। भजहिं मोहि सुर नर मुनि नायक॥
संत असंतन्ह के गुन भाषे। ते न परहिं भव जिन्ह लखि राखे॥ ४॥

इसीसे वे शुभ और अशुभ फल देनेवाले कर्मोंको त्यागकर देवता, मनुष्य और मुनियोंके नायक मुझको भजते हैं। [इस प्रकार] मैंने संतों और असंतोंके गुण कहे। जिन लोगोंने इन गुणोंको समझ रखा है, वे जन्म-मरणके चक्करमें नहीं पड़ते॥ ४॥

दो०—सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक॥ ४१॥

हे तात! सुनो, मायासे रचे हुए ही अनेक (सब) गुण और दोष हैं (इनकी कोई वास्तविक सत्ता नहीं है)। गुण (विवेक) इसीमें है कि दोनों ही न देखे जायँ; इन्हें देखना ही अविवेक है॥ ४१॥

चौ०—श्रीमुख बचन सुनत सब भाई। हरषे प्रेम न हृदयँ समाई॥
करहिं बिनय अति बारहिं बारा। हनूमान हियँ हरष अपारा॥ १॥

भगवान्‌के श्रीमुखसे ये वचन सुनकर सब भाई हर्षित हो गये। प्रेम उनके हृदयोंमें समाता नहीं। वे बार-बार बड़ी विनती करते हैं। विशेषकर हनुमान्‌जीके हृदयमें अपार हर्ष है॥ १॥

पुनि रघुपति निज मंदिर गए। एहि बिधि चरित करत नित नए॥
बार बार नारद मुनि आवहिं। चरित पुनीत राम के गावहिं॥ २॥

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी अपने महलको गये। इस प्रकार वे नित्य नयी लीला करते हैं। नारद मुनि अयोध्यामें बार-बार आते हैं और आकर श्रीरामजीके पवित्र चरित्र गाते हैं॥ २॥

नित नव चरित देखि मुनि जाहीं। ब्रह्मलोक सब कथा कहाहीं॥
सुनि बिरंचि अतिसय सुख मानहिं। पुनि पुनि तात करहु गुन गानहिं॥ ३॥

मुनि यहाँसे नित्य नये-नये चरित्र देखकर जाते हैं और ब्रह्मलोकमें जाकर सब कथा कहते हैं। ब्रह्माजी सुनकर अत्यन्त सुख मानते हैं [और कहते हैं—] हे तात! बार-बार श्रीरामजीके गुणोंका गान करो॥ ३॥

सनकादिक नारदहि सराहहिं। जद्यपि ब्रह्म निरत मुनि आहहिं॥
सुनि गुन गान समाधि बिसारी। सादर सुनहिं परम अधिकारी॥ ४॥

सनकादि मुनि नारदजीकी सराहना करते हैं। यद्यपि वे (सनकादि) मुनि ब्रह्मनिष्ठ हैं, परन्तु श्रीरामजीका गुणगान सुनकर वे भी अपनी ब्रह्मसमाधिको भूल जाते हैं और आदरपूर्वक उसे सुनते हैं। वे [रामकथा सुननेके] श्रेष्ठ अधिकारी हैं॥ ४॥

दो०—जीवनमुक्त ब्रह्मपर चरित सुनहिं तजि ध्यान।
जे हरि कथाँ न करहिं रति तिन्ह के हिय पाषान॥ ४२॥

सनकादि मुनि-जैसे जीवन्मुक्त और ब्रह्मनिष्ठ पुरुष भी ध्यान (ब्रह्म-समाधि) छोड़कर श्रीरामजीके चरित्र सुनते हैं। यह जानकर भी जो श्रीहरिकी कथासे प्रेम नहीं करते, उनके हृदय [सचमुच ही] पत्थर [के समान] हैं॥ ४२॥

चौ०—एक बार रघुनाथ बोलाए। गुर द्विज पुरबासी सब आए॥
बैठे गुर मुनि अरु द्विज सज्जन। बोले बचन भगत भव भंजन॥ १॥

एक बार श्रीरघुनाथजीके बुलाये हुए गुरु वसिष्ठजी, ब्राह्मण और अन्य सब नगरनिवासी सभामें आये। जब गुरु, मुनि, ब्राह्मण तथा अन्य सब सज्जन यथायोग्य बैठ गये, तब भक्तोंके जन्म-मरणको मिटानेवाले श्रीरामजी वचन बोले— ॥ १॥

सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहउँ न कछु ममता उर आनी॥
नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई॥ २॥

हे समस्त नगरनिवासियो! मेरी बात सुनिये। यह बात मैं हृदयमें कुछ ममता लाकर नहीं कहता हूँ। न अनीतिकी बात कहता हूँ और न इसमें कुछ प्रभुता ही है। इसलिये [संकोच और भय छोड़कर, ध्यान देकर] मेरी बातोंको सुन लो और [फिर] यदि तुम्हें अच्छी लगे, तो उसके अनुसार करो!॥ २॥

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई॥
जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई॥ ३॥

वही मेरा सेवक है और वही प्रियतम है, जो मेरी आज्ञा माने। हे भाई! यदि मैं कुछ अनीतिकी बात कहूँ तो भय भुलाकर (बेखटके) मुझे रोक देना॥ ३॥

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा॥ ४॥

बड़े भाग्यसे यह मनुष्य-शरीर मिला है। सब ग्रन्थोंने यही कहा है कि यह शरीर देवताओंको भी दुर्लभ है (कठिनतासे मिलता है)। यह साधनका धाम और मोक्षका दरवाजा है। इसे पाकर भी जिसने परलोक न बना लिया॥ ४॥

दो०—सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोष लगाइ॥ ४३॥

वह परलोकमें दुःख पाता है, सिर पीट-पीटकर पछताता है तथा [अपना दोष न समझकर] कालपर, कर्मपर और ईश्वरपर मिथ्या दोष लगाता है॥ ४३॥

चौ०—एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई॥
नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥ १॥

हे भाई! इस शरीरके प्राप्त होनेका फल विषयभोग नहीं है। [इस जगत्‌के भोगोंकी तो बात ही क्या] स्वर्गका भोग भी बहुत थोड़ा है और अन्तमें दुःख देनेवाला है। अतः जो लोग मनुष्य-शरीर पाकर विषयोंमें मन लगा देते हैं, वे मूर्ख अमृतको बदलकर विष ले लेते हैं॥ १॥

ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई॥
आकर चारि लच्छ चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी॥ २॥

जो पारसमणिको खोकर बदलेमें घुँघची ले लेता है, उसको कभी कोई भला (बुद्धिमान्) नहीं कहता। यह अविनाशी जीव [अण्डज, स्वेदज, जरायुज और उद्भिज्ज] चार खानों और चौरासी लाख योनियोंमें चक्कर लगाता रहता है॥ २॥

फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा॥
कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥ ३॥

मायाकी प्रेरणासे काल, कर्म, स्वभाव और गुणसे घिरा हुआ (इनके वशमें हुआ) यह सदा भटकता रहता है। बिना ही कारण स्नेह करनेवाले ईश्वर कभी विरले ही दया करके इसे मनुष्यका शरीर देते हैं॥ ३॥

नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो॥
करनधार सदगुर दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा॥ ४॥

यह मनुष्यका शरीर भवसागर [से तारने] के लिये बेड़ा (जहाज) है। मेरी कृपा ही अनुकूल वायु है। सद्गुरु इस मजबूत जहाजके कर्णधार (खेनेवाले) हैं। इस प्रकार दुर्लभ (कठिनतासे मिलनेवाले) साधन सुलभ होकर (भगवत्कृपासे सहज ही) उसे प्राप्त हो गये हैं,॥ ४॥

दो०—जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥ ४४॥

जो मनुष्य ऐसे साधन पाकर भी भवसागरसे न तरे, वह कृतघ्न और मन्दबुद्धि है और आत्महत्या करनेवालेकी गतिको प्राप्त होता है॥ ४४॥

चौ०—जौं परलोक इहाँ सुख चहहू। सुनि मम बचन हृदयँ दृढ़ गहहू॥
सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान श्रुति गाई॥ १॥

यदि परलोकमें और यहाँ [दोनों जगह] सुख चाहते हो तो मेरे वचन सुनकर उन्हें हृदयमें दृढ़तासे पकड़ रखो। हे भाई! यह मेरी भक्तिका मार्ग सुलभ और सुखदायक है, पुराणों और वेदोंने इसे गाया है॥ १॥

ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहुँ टेका॥
करत कष्ट बहु पावइ कोऊ। भक्ति हीन मोहि प्रिय नहिं सोऊ॥ २॥

ज्ञान अगम (दुर्गम) है, [और] उसकी प्राप्तिमें अनेकों विघ्न हैं। उसका साधन कठिन है और उसमें मनके लिये कोई आधार नहीं है। बहुत कष्ट करनेपर कोई उसे पा भी लेता है तो वह भी भक्तिरहित होनेसे मुझको प्रिय नहीं होता॥ २॥

भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी॥
पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता। सतसंगति संसृति कर अंता॥ ३॥

भक्ति स्वतन्त्र है और सब सुखोंकी खान है। परन्तु सत्संग (संतोंके संग) के बिना प्राणी इसे नहीं पा सकते और पुण्यसमूहके बिना संत नहीं मिलते। सत्संगति ही संसृति (जन्म-मरणके चक्र)का अन्त करती है॥ ३॥

पुन्य एक जग महुँ नहिं दूजा। मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा॥
सानुकूल तेहि पर मुनि देवा। जो तजि कपटु करइ द्विज सेवा॥ ४॥

जगत्‌में पुण्य एक ही है, [उसके समान] दूसरा नहीं। वह है—मन, कर्म और वचनसे ब्राह्मणोंके चरणोंकी पूजा करना। जो कपटका त्याग करके ब्राह्मणोंकी सेवा करता है, उसपर मुनि और देवता प्रसन्न रहते हैं॥ ४॥

दो०—औरउ एक गुपुत मत सबहि कहउँ कर जोरि।
संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि॥ ४५॥

और भी एक गुप्त मत है, मैं उसे सबसे हाथ जोड़कर कहता हूँ कि शङ्करजीके भजन बिना मनुष्य मेरी भक्ति नहीं पाता॥ ४५॥

चौ०—कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा॥
सरल सुभाव न मन कुटिलाई। जथा लाभ संतोष सदाई॥ १॥

कहो तो, भक्तिमार्गमें कौन-सा परिश्रम है? इसमें न योगकी आवश्यकता है, न यज्ञ, जप, तप और उपवासकी! [यहाँ इतना ही आवश्यक है कि] सरल स्वभाव हो, मनमें कुटिलता न हो और जो कुछ मिले उसीमें सदा सन्तोष रखे॥ १॥

मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा॥
बहुत कहउँ का कथा बढ़ाई। एहि आचरन बस्य मैं भाई॥ २॥

मेरा दास कहलाकर यदि कोई मनुष्योंकी आशा करता है तो तुम्हीं कहो, उसका क्या विश्वास है? (अर्थात् उसकी मुझपर आस्था बहुत ही निर्बल है।) बहुत बात बढ़ाकर क्या कहूँ? हे भाइयो! मैं तो इसी आचरणके वशमें हूँ॥ २॥

बैर न बिग्रह आस न त्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा॥
अनारंभ अनिकेत अमानी। अनघ अरोष दच्छ बिग्यानी॥ ३॥

न किसीसे वैर करे, न लड़ाई-झगड़ा करे, न आशा रखे, न भय ही करे। उसके लिये सभी दिशाएँ सदा सुखमयी हैं। जो कोई भी आरम्भ (फलकी इच्छासे कर्म) नहीं करता, जिसका कोई अपना घर नहीं है (जिसकी घरमें ममता नहीं है), जो मानहीन, पापहीन और क्रोधहीन है, जो [भक्ति करनेमें] निपुण और विज्ञानवान् है॥ ३॥

प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृन सम बिषय स्वर्ग अपबर्गा॥
भगति पच्छ हठ नहिं सठताई। दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई॥ ४॥

संतजनोंके संसर्ग (सत्संग) से जिसे सदा प्रेम है, जिसके मनमें सब विषय, यहाँतक कि स्वर्ग और मुक्तितक [भक्तिके सामने] तृणके समान हैं, जो भक्तिके पक्षमें हठ करता है, पर [दूसरेके मतका खण्डन करनेकी] मूर्खता नहीं करता तथा जिसने सब कुतर्कोंको दूर बहा दिया है॥ ४॥

दो०—मम गुन ग्राम नाम रत गत ममता मद मोह।
ता कर सुख सोइ जानइ परानंद संदोह॥ ४६॥

जो मेरे गुणसमूहोंके और मेरे नामके परायण है, एवं ममता, मद और मोहसे रहित है, उसका सुख वही जानता है, जो [परमात्मारूप] परमानन्दराशिको प्राप्त है॥ ४६॥

चौ०—सुनत सुधासम बचन राम के। गहे सबनि पद कृपाधाम के॥
जननि जनक गुर बंधु हमारे। कृपा निधान प्रान ते प्यारे॥ १॥

श्रीरामचन्द्रजीके अमृतके समान वचन सुनकर सबने कृपाधामके चरण पकड़ लिये [और कहा—] हे कृपानिधान! आप हमारे माता, पिता, गुरु, भाई—सब कुछ हैं और प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं॥ १॥

तनु धनु धाम राम हितकारी। सब बिधि तुम्ह प्रनतारति हारी॥
असि सिख तुम्ह बिनु देइ न कोऊ। मातु पिता स्वारथ रत ओऊ॥ २॥

और हे शरणागतके दुःख हरनेवाले रामजी! आप ही हमारे शरीर, धन, घर-द्वार और सभी प्रकारसे हित करनेवाले हैं। ऐसी शिक्षा आपके अतिरिक्त कोई नहीं दे सकता। माता-पिता [हितैषी हैं और शिक्षा भी देते हैं] परन्तु वे भी स्वार्थपरायण हैं [इसलिये ऐसी परम हितकारी शिक्षा नहीं देते]॥ २॥

हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥
स्वारथ मीत सकल जग माहीं। सपनेहुँ प्रभु परमारथ नाहीं॥ ३॥

हे असुरोंके शत्रु! जगत्‌में बिना हेतुके (निःस्वार्थ) उपकार करनेवाले तो दो ही हैं—एक आप, दूसरे आपके सेवक। जगत्‌में [शेष] सभी स्वार्थके मित्र हैं। हे प्रभो! उनमें स्वप्नमें भी परमार्थका भाव नहीं है॥ ३॥

सब के बचन प्रेम रस साने। सुनि रघुनाथ हृदयँ हरषाने॥
निज निज गृह गए आयसु पाई। बरनत प्रभु बतकही सुहाई॥ ४॥

सबके प्रेमरसमें सने हुए वचन सुनकर श्रीरघुनाथजी हृदयमें हर्षित हुए। फिर आज्ञा पाकर सब प्रभुकी सुन्दर बातचीतका वर्णन करते हुए अपने-अपने घर गये॥ ४॥

दो०—उमा अवधबासी नर नारि कृतारथ रूप।
ब्रह्म सच्चिदानंद घन रघुनायक जहँ भूप॥ ४७॥

[शिवजी कहते हैं—] हे उमा! अयोध्यामें रहनेवाले पुरुष और स्त्री सभी कृतार्थस्वरूप हैं; जहाँ स्वयं सच्चिदानन्दघन ब्रह्म श्रीरघुनाथजी राजा हैं॥ ४७॥

चौ०—एक बार बसिष्ट मुनि आए। जहाँ राम सुखधाम सुहाए॥
अति आदर रघुनायक कीन्हा। पद पखारि पादोदक लीन्हा॥ १॥

एक बार मुनि वसिष्ठजी वहाँ आये जहाँ सुन्दर सुखके धाम श्रीरामजी थे। श्रीरघुनाथजीने उनका बहुत ही आदर-सत्कार किया और उनके चरण धोकर चरणामृत लिया॥ १॥

राम सुनहु मुनि कह कर जोरी। कृपासिंधु बिनती कछु मोरी॥
देखि देखि आचरन तुम्हारा। होत मोह मम हृदयँ अपारा॥ २॥

मुनिने हाथ जोड़कर कहा—हे कृपासागर श्रीरामजी! मेरी कुछ विनती सुनिये। आपके आचरणों (मनुष्योचित चरित्रों) को देख-देखकर मेरे हृदयमें अपार मोह (भ्रम) होता है॥ २॥

महिमा अमिति बेद नहिं जाना। मैं केहि भाँति कहउँ भगवाना॥
उपरोहित्य कर्म अति मंदा। बेद पुरान सुमृति कर निंदा॥ ३॥

हे भगवन्! आपकी महिमाकी सीमा नहीं है, उसे वेद भी नहीं जानते। फिर मैं किस प्रकार कह सकता हूँ? पुरोहितीका कर्म (पेशा) बहुत ही नीचा है। वेद, पुराण और स्मृति सभी इसकी निन्दा करते हैं॥ ३॥

जब न लेउँ मैं तब बिधि मोही। कहा लाभ आगें सुत तोही॥
परमातमा ब्रह्म नर रूपा। होइहि रघुकुल भूषन भूपा॥ ४॥

जब मैं उसे (सूर्यवंशकी पुरोहितीका काम) नहीं लेता था, तब ब्रह्माजीने मुझे कहा था—हे पुत्र! इससे तुमको आगे चलकर बहुत लाभ होगा। स्वयं ब्रह्म परमात्मा मनुष्यरूप धारणकर रघुकुलके भूषण राजा होंगे॥ ४॥

दो०—तब मैं हृदयँ बिचारा जोग जग्य ब्रत दान।
जा कहुँ करिअ सो पैहउँ धर्म न एहि सम आन॥ ४८॥

तब मैंने हृदयमें विचार किया कि जिसके लिये योग, यज्ञ, व्रत और दान किये जाते हैं, उसे मैं इसी कर्मसे पा जाऊँगा; तब तो इसके समान दूसरा कोई धर्म ही नहीं है॥ ४८॥

चौ०—जप तप नियम जोग निज धर्मा। श्रुति संभव नाना सुभ कर्मा॥
ग्यान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन॥ १॥

जप, तप, नियम, योग, अपने-अपने [वर्णाश्रमके] धर्म, श्रुतियोंसे उत्पन्न (वेदविहित) बहुत-से शुभ कर्म, ज्ञान, दया, दम (इन्द्रियनिग्रह), तीर्थस्नान आदि जहाँतक वेद और संतजनोंने धर्म कहे हैं [उनके करनेका]— ॥ १॥

आगम निगम पुरान अनेका। पढ़े सुने कर फल प्रभु एका॥
तव पद पंकज प्रीति निरंतर। सब साधन कर यह फल सुंदर॥ २॥

[तथा] हे प्रभो! अनेक तन्त्र, वेद और पुराणोंके पढ़ने और सुननेका सर्वोत्तम फल एक ही है, और सब साधनोंका भी यही एक सुन्दर फल है कि आपके चरणकमलोंमें सदा-सर्वदा प्रेम हो॥ २॥

छूटइ मल कि मलहि के धोएँ। घृत कि पाव कोइ बारि बिलोएँ॥
प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभिअंतर मल कबहुँ न जाई॥ ३॥

मैलसे धोनेसे क्या मैल छूटता है? जलके मथनेसे क्या कोई घी पा सकता है? [उसी प्रकार] हे रघुनाथजी! प्रेम-भक्तिरूपी [निर्मल] जलके बिना अन्तःकरणका मल कभी नहीं जाता॥ ३॥

सोइ सर्बग्य तग्य सोइ पंडित। सोइ गुन गृह बिग्यान अखंडित॥
दच्छ सकल लच्छन जुत सोई। जाकें पद सरोज रति होई॥ ४॥

वही सर्वज्ञ है, वही तत्त्वज्ञ और पण्डित है, वही गुणोंका घर और अखण्ड विज्ञानवान् है; वही चतुर और सब सुलक्षणोंसे युक्त है, जिसका आपके चरणकमलोंमें प्रेम है॥ ४॥

दो०—नाथ एक बर मागउँ राम कृपा करि देहु।
जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु॥ ४९॥

हे नाथ! हे श्रीरामजी! मैं आपसे एक वर माँगता हूँ, कृपा करके दीजिये। प्रभु (आप) के चरणकमलोंमें मेरा प्रेम जन्म-जन्मातरमें भी कभी न घटे॥ ४९॥

चौ०—अस कहि मुनि बसिष्ट गृह आए। कृपासिंधु के मन अति भाए॥
हनूमान भरतादिक भ्राता। संग लिए सेवक सुखदाता॥ १॥

ऐसा कहकर मुनि वसिष्ठजी घर आये। वे कृपासागर श्रीरामजीके मनको बहुत ही अच्छे लगे। तदनन्तर सेवकोंको सुख देनेवाले श्रीरामजीने हनुमान्‌जी तथा भरतजी

आदि भाइयोंको साथ लिया॥ १॥

पुनि कृपाल पुर बाहेर गए। गज रथ तुरग मगावत भए॥
देखि कृपा करि सकल सराहे। दिए उचित जिन्ह जिन्ह तेइ चाहे॥ २॥

और फिर कृपालु श्रीरामजी नगरके बाहर गये और वहाँ उन्होंने हाथी, रथ और घोड़े मँगवाये। उन्हें देखकर, कृपा करके प्रभुने सबकी सराहना की और उनको जिस-जिसने चाहा, उस-उसको उचित जानकर दिया॥ २॥

हरन सकल श्रम प्रभु श्रम पाई। गए जहाँ सीतल अवँराई॥
भरत दीन्ह निज बसन डसाई। बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई॥ ३॥

संसारके सभी श्रमोंको हरनेवाले प्रभुने [हाथी, घोड़े आदि बाँटनेमें] श्रमका अनुभव किया और [श्रम मिटानेको] वहाँ गये जहाँ शीतल अमराई (आमोंका बगीचा) थी। वहाँ भरतजीने अपना वस्त्र बिछा दिया। प्रभु उसपर बैठ गये और सब भाई उनकी सेवा करने लगे॥ ३॥

मारुतसुत तब मारुत करई। पुलक बपुष लोचन जल भरई॥
हनूमान सम नहिं बड़भागी। नहिं कोउ राम चरन अनुरागी॥४॥
गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निज मुख गाई॥५॥

उस समय पवनपुत्र हनुमान्‌जी पवन (पंखा) करने लगे। उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुओंका] जल भर आया। [शिवजी कहने लगे—] हे गिरिजे! हनुमान्‌जीके समान न तो कोई बड़भागी है और न कोई श्रीरामजीके चरणोंका प्रेमी ही है, जिनके प्रेम और सेवाकी [स्वयं] प्रभुने अपने श्रीमुखसे बार-बार बड़ाई की है॥ ४-५॥

दो०—तेहिं अवसर मुनि नारद आए करतल बीन।
गावन लगे राम कल कीरति सदा नबीन॥५०॥

उसी अवसरपर नारद मुनि हाथमें वीणा लिये हुए आये। वे श्रीरामजीकी सुन्दर और नित्य नवीन रहनेवाली कीर्ति गाने लगे॥ ५०॥

चौ०—मामवलोकय पंकज लोचन। कृपा बिलोकनि सोच बिमोचन॥
नील तामरस स्याम काम अरि। हृदय कंज मकरंद मधुप हरि॥ १॥

कृपापूर्वक देख लेनेमात्रसे शोकके छुड़ानेवाले हे कमलनयन! मेरी ओर देखिये (मुझपर भी कृपादृष्टि कीजिये)। हे हरि! आप नील कमलके समान श्यामवर्ण और कामदेवके शत्रु महादेवजीके हृदयकमलके मकरन्द (प्रेम-रस) के पान करनेवाले भ्रमर हैं॥ १॥

जातुधान बरूथ बल भंजन। मुनि सज्जन रंजन अघ गंजन॥
भूसुर ससि नव बृंद बलाहक। असरन सरन दीन जन गाहक॥ २॥

आप राक्षसोंकी सेनाके बलको तोड़नेवाले हैं। मुनियों और संतजनोंको आनन्द देनेवाले और पापोंके नाश करनेवाले हैं। ब्राह्मणरूपी खेतीके लिये आप नये मेघसमूह हैं और शरणहीनोंको शरण देनेवाले तथा दीनजनोंको अपने आश्रयमें ग्रहण करनेवाले हैं॥ २॥

भुज बल बिपुल भार महि खंडित। खर दूषन बिराध बध पंडित॥
रावनारि सुखरूप भूपबर। जय दसरथ कुल कुमुद सुधाकर॥ ३॥

अपने बाहुबलसे पृथ्वीके बड़े भारी बोझको नष्ट करनेवाले, खर-दूषण और विराधके वध करनेमें कुशल, रावणके शत्रु, आनन्दस्वरूप, राजाओंमें श्रेष्ठ और दशरथके कुलरूपी कुमुदिनीके चन्द्रमा श्रीरामजी! आपकी जय हो॥ ३॥

सुजस पुरान बिदित निगमागम। गावत सुर मुनि संत समागम॥
कारुनीक ब्यलीक मद खंडन। सब बिधि कुसल कोसला मंडन॥ ४॥

आपका सुन्दर यश पुराणों, वेदोंमें और तन्त्रादि शास्त्रोंमें प्रकट है। देवता, मुनि और संतोंके समुदाय उसे गाते हैं। आप करुणा करनेवाले और झूठे मदका नाश करनेवाले, सब प्रकारसे कुशल (निपुण) और श्रीअयोध्याजीके भूषण ही हैं॥ ४॥

कलि मल मथन नाम ममताहन। तुलसिदास प्रभु पाहि प्रनत जन॥ ५॥

आपका नाम कलियुगके पापोंको मथ डालनेवाला और ममताको मारनेवाला है। हे तुलसीदासके प्रभु! शरणागतकी रक्षा कीजिये॥ ५॥

दो०—प्रेम सहित मुनि नारद बरनि राम गुन ग्राम।
सोभासिंधु हृदयँ धरि गए जहाँ बिधि धाम॥ ५१॥

श्रीरामचन्द्रजीके गुणसमूहोंका प्रेमपूर्वक वर्णन करके मुनि नारदजी शोभाके समुद्र प्रभुको हृदयमें धरकर जहाँ ब्रह्मलोक है, वहाँ चले गये॥ ५१॥

चौ०—गिरिजा सुनहु बिसद यह कथा। मैं सब कही मोरि मति जथा॥
राम चरित सत कोटि अपारा। श्रुति सारदा न बरनै पारा॥ १॥

[शिवजी कहते हैं—] हे गिरिजे! सुनो, मैंने यह उज्ज्वल कथा, जैसी मेरी बुद्धि थी, वैसी पूरी कह डाली। श्रीरामजीके चरित्र सौ करोड़ [अथवा] अपार हैं। श्रुति और शारदा भी उनका वर्णन नहीं कर सकते॥ १॥

राम अनंत अनंत गुनानी। जन्म कर्म अनंत नामानी॥
जल सीकर महि रज गनि जाहीं। रघुपति चरित न बरनि सिराहीं॥ २॥

भगवान् श्रीराम अनन्त हैं; उनके गुण अनन्त हैं; जन्म, कर्म और नाम भी अनन्त हैं। जलकी बूँदें और पृथ्वीके रज-कण चाहे गिने जा सकते हों, पर श्रीरघुनाथजीके चरित्र वर्णन करनेसे नहीं चुकते॥ २॥

बिमल कथा हरि पद दायनी। भगति होइ सुनि अनपायनी॥
उमा कहिउँ सब कथा सुहाई। जो भुसुंडि खगपतिहि सुनाई॥ ३॥

यह पवित्र कथा भगवान्‌के परमपदको देनेवाली है। इसके सुननेसे अविचल भक्ति प्राप्त होती है। हे उमा! मैंने वह सब सुन्दर कथा कही जो काकभुशुण्डिजीने गरुड़जीको सुनायी थी॥ ३॥

कछुक राम गुन कहेउँ बखानी। अब का कहौं सो कहहु भवानी॥
सुनि सुभ कथा उमा हरषानी। बोली अति बिनीत मृदु बानी॥ ४॥

मैंने श्रीरामजीके कुछ थोड़े-से गुण बखानकर कहे हैं। हे भवानी! सो कहो, अब और क्या कहूँ? श्रीरामजीकी मङ्गलमयी कथा सुनकर पार्वतीजी हर्षित हुईं और अत्यन्त विनम्र तथा कोमल वाणी बोलीं—॥ ४॥

धन्य धन्य मैं धन्य पुरारी। सुनेउँ राम गुन भव भय हारी॥ ५॥

हे त्रिपुरारि! मैं धन्य हूँ, धन्य-धन्य हूँ, जो मैंने जन्म-मृत्युके भयको हरण करनेवाले श्रीरामजीके गुण (चरित्र) सुने॥ ५॥

दो०—तुम्हरी कृपाँ कृपायतन अब कृतकृत्य न मोह।
जानेउँ राम प्रताप प्रभु चिदानंद संदोह॥ ५२ (क)॥

हे कृपाधाम! अब आपकी कृपासे मैं कृतकृत्य हो गयी। अब मुझे मोह नहीं रह गया। हे प्रभु! मैं सच्चिदानन्दघन प्रभु श्रीरामजीके प्रतापको जान गयी॥ ५२ (क)॥

नाथ तवानन ससि स्रवत कथा सुधा रघुबीर।
श्रवन पुटन्हि मन पान करि नहिं अघात मतिधीर॥ ५२ (ख)॥

हे नाथ! आपका मुखरूपी चन्द्रमा श्रीरघुवीरकी कथारूपी अमृत बरसाता है। हे मतिधीर! मेरा मन कर्णपुटोंसे उसे पीकर तृप्त नहीं होता॥ ५२ (ख)॥

चौ०—राम चरित जे सुनत अघाहीं। रस बिसेष जाना तिन्ह नाहीं॥
जीवनमुक्त महामुनि जेऊ। हरि गुन सुनहिं निरंतर तेऊ॥ १॥

श्रीरामजीके चरित्र सुनते-सुनते जो तृप्त हो जाते हैं (बस कर देते हैं), उन्होंने तो उसका विशेष रस जाना ही नहीं। जो जीवन्मुक्त महामुनि हैं, वे भी भगवान्‌के गुण निरन्तर सुनते रहते हैं॥ १॥

भव सागर चह पार जो पावा। राम कथा ता कहँ दृढ़ नावा॥
बिषइन्ह कहँ पुनि हरि गुन ग्रामा। श्रवन सुखद अरु मन अभिरामा॥ २॥

जो संसाररूपी सागरका पार पाना चाहता है, उसके लिये तो श्रीरामजीकी कथा दृढ़ नौकाके समान है। श्रीहरिके गुणसमूह तो विषयी लोगोंके लिये भी कानोंको सुख देनेवाले और मनको आनन्द देनेवाले हैं॥ २॥

श्रवनवंत अस को जग माहीं। जाहि न रघुपति चरित सोहाहीं॥
ते जड़ जीव निजात्मक घाती। जिन्हहि न रघुपति कथा सोहाती॥ ३॥

जगत्‌में कानवाला ऐसा कौन है जिसे श्रीरघुनाथजीके चरित्र न सुहाते हों। जिन्हें श्रीरघुनाथजीकी कथा नहीं सुहाती, वे मूर्ख जीव तो अपनी आत्माकी हत्या करनेवाले हैं॥ ३॥

हरिचरित्र मानस तुम्ह गावा। सुनि मैं नाथ अमिति सुख पावा॥
तुम्ह जो कही यह कथा सुहाई। कागभसुंडि गरुड़ प्रति गाई॥ ४॥

हे नाथ! आपने श्रीरामचरितमानसका गान किया, उसे सुनकर मैंने अपार सुख पाया। आपने जो यह कहा कि यह सुन्दर कथा काकभुशुण्डिजीने गरुड़जीसे कही थी—॥ ४॥

दो०—बिरति ग्यान बिग्यान दृढ़ राम चरन अति नेह।
बायस तन रघुपति भगति मोहि परम संदेह॥ ५३॥

सो कौएका शरीर पाकर भी काकभुशुण्डि वैराग्य, ज्ञान और विज्ञानमें दृढ़ हैं, उनका श्रीरामजीके चरणोंमें अत्यन्त प्रेम है और उन्हें श्रीरघुनाथजीकी भक्ति भी प्राप्त है, इस बातका मुझे परम सन्देह हो रहा है॥ ५३॥

चौ०—नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धर्म ब्रतधारी॥
धर्मसील कोटिक महँ कोई। बिषय बिमुख बिराग रत होई॥ १॥

हे त्रिपुरारि! सुनिये, हजारों मनुष्योंमें कोई एक धर्मके व्रतका धारण करनेवाला होता है और करोड़ों धर्मात्माओंमें कोई एक विषयसे विमुख (विषयोंका त्यागी) और वैराग्यपरायण होता है॥ १॥

कोटि बिरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यक ग्यान सकृत कोउ लहई॥
ग्यानवंत कोटिक महँ कोऊ। जीवनमुक्त सकृत जग सोऊ॥ २॥

श्रुति कहती है कि करोड़ों विरक्तोंमें कोई एक ही सम्यक् (यथार्थ) ज्ञानको प्राप्त करता है और करोड़ों ज्ञानियोंमें कोई एक ही जीवन्मुक्त होता है। जगत्में कोई विरला ही ऐसा (जीवन्मुक्त) होगा॥ २॥

तिन्ह सहस्र महुँ सब सुख खानी। दुर्लभ ब्रह्मलीन बिग्यानी॥
धर्मसील बिरक्त अरु ग्यानी। जीवनमुक्त ब्रह्मपर प्रानी॥ ३॥

हजारों जीवन्मुक्तोंमें भी सब सुखोंकी खान, ब्रह्ममें लीन विज्ञानवान् पुरुष और भी दुर्लभ है। धर्मात्मा, वैराग्यवान्, ज्ञानी, जीवन्मुक्त और ब्रह्मलीन॥ ३॥

सब ते सो दुर्लभ सुरराया। राम भगति रत गत मद माया॥
सो हरिभगति काग किमि पाई। बिस्वनाथ मोहि कहहु बुझाई॥ ४॥

इन सबमें भी हे देवाधिदेव महादेवजी! वह प्राणी अत्यन्त दुर्लभ है जो मद और मायासे रहित होकर श्रीरामजीकी भक्तिके परायण हो। हे विश्वनाथ! ऐसी दुर्लभ हरिभक्तिको कौआ कैसे पा गया, मुझे समझाकर कहिये॥ ४॥

दो०—राम परायन ग्यान रत गुनागार मति धीर।
नाथ कहहु केहि कारन पायउ काक सरीर॥ ५४॥

हे नाथ! कहिये, [ऐसे] श्रीरामपरायण, ज्ञाननिरत, गुणधाम और धीरबुद्धि भुशुण्डिजीने कौएका शरीर किस कारण पाया?॥ ५४॥

चौ०—यह प्रभु चरित पवित्र सुहावा। कहहु कृपाल काग कहँ पावा॥
तुम्ह केहि भाँति सुना मदनारी। कहहु मोहि अति कौतुक भारी॥ १॥

हे कृपालु! बताइये, उस कौएने प्रभुका यह पवित्र और सुन्दर चरित्र कहाँ पाया? और हे कामदेवके शत्रु! यह भी बताइये, आपने इसे किस प्रकार सुना? मुझे बड़ा भारी कौतूहल हो रहा है॥ १॥

गरुड़ महाग्यानी गुन रासी। हरिसेवक अति निकट निवासी॥
तेहिं केहि हेतु काग सन जाई। सुनी कथा मुनि निकर बिहाई॥ २॥

गरुड़जी तो महान् ज्ञानी, सद्गुणोंकी राशि, श्रीहरिके सेवक और उनके अत्यन्त निकट रहनेवाले (उनके वाहन ही) हैं। उन्होंने मुनियोंके समूहको छोड़कर, कौएसे जाकर हरिकथा किस कारण सुनी?॥ २॥

कहहु कवन बिधि भा संबादा। दोउ हरिभगत काग उरगादा॥
गौरि गिरा सुनि सरल सुहाई। बोले सिव सादर सुख पाई॥ ३॥

कहिये, काकभुशुण्डि और गरुड़ इन दोनों हरिभक्तोंकी बातचीत किस प्रकार हुई? पार्वतीजीकी सरल, सुन्दर वाणी सुनकर शिवजी सुख पाकर आदरके साथ बोले— ॥ ३ ॥

धन्य सती पावन मति तोरी। रघुपति चरन प्रीति नहिं थोरी॥
सुनहु परम पुनीत इतिहासा। जो सुनि सकल लोक भ्रम नासा॥ ४॥

हे सती! तुम धन्य हो; तुम्हारी बुद्धि अत्यन्त पवित्र है। श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें तुम्हारा कम प्रेम नहीं है (अत्यधिक प्रेम है)। अब वह परम पवित्र इतिहास सुनो, जिसे सुननेसे सारे लोकके भ्रमका नाश हो जाता है॥ ४॥

उपजइ राम चरन बिस्वासा। भव निधि तर नर बिनहिं प्रयासा॥ ५॥

तथा श्रीरामजीके चरणोंमें विश्वास उत्पन्न होता है और मनुष्य बिना ही परिश्रम संसाररूपी समुद्रसे तर जाता है॥ ५॥

दो०—ऐसिअ प्रस्न बिहंगपति कीन्हि काग सन जाइ।
सो सब सादर कहिहउँ सुनहु उमा मन लाइ॥ ५५॥

पक्षिराज गरुड़जीने भी जाकर काकभुशुण्डिजीसे प्रायः ऐसे ही प्रश्न किये थे। हे उमा! मैं वह सब आदरसहित कहूँगा, तुम मन लगाकर सुनो॥ ५५॥

चौ०—मैं जिमि कथा सुनी भव मोचनि। सो प्रसंग सुनु सुमुखि सुलोचनि॥
प्रथम दच्छ गृह तव अवतारा। सती नाम तब रहा तुम्हारा॥ १॥

मैंने जिस प्रकार वह भव (जन्म-मृत्यु) से छुड़ानेवाली कथा सुनी, हे सुमुखी! हे सुलोचनी! वह प्रसंग सुनो। पहले तुम्हारा अवतार दक्षके घर हुआ था। तब तुम्हारा नाम सती था॥ १॥

दच्छ जग्य तव भा अपमाना। तुम्ह अति क्रोध तजे तब प्राना॥
मम अनुचरन्ह कीन्ह मख भंगा। जानहु तुम्ह सो सकल प्रसंगा॥ २॥

दक्षके यज्ञमें तुम्हारा अपमान हुआ। तब तुमने अत्यन्त क्रोध करके प्राण त्याग दिये थे; और फिर मेरे सेवकोंने यज्ञ विध्वंस कर दिया था। वह सारा प्रसंग तुम जानती ही हो॥ २॥

तब अति सोच भयउ मन मोरें। दुखी भयउँ बियोग प्रिय तोरें॥
सुंदर बन गिरि सरित तड़ागा। कौतुक देखत फिरउँ बेरागा॥ ३॥

तब मेरे मनमें बड़ा सोच हुआ और हे प्रिये! मैं तुम्हारे वियोगसे दुःखी हो गया। मैं विरक्तभावसे सुन्दर वन, पर्वत, नदी और तालाबोंका कौतुक (दृश्य) देखता फिरता था॥ ३॥

गिरि सुमेर उत्तर दिसि दूरी। नील सैल एक सुंदर भूरी॥
तासु कनकमय सिखर सुहाए। चारि चारु मोरे मन भाए॥ ४॥

सुमेरु पर्वतकी उत्तर दिशामें, और भी दूर, एक बहुत ही सुन्दर नील पर्वत है। उसके सुन्दर स्वर्णमय शिखर हैं, [उनमेंसे] चार सुन्दर शिखर मेरे मनको बहुत ही अच्छे लगे॥ ४॥

तिन्ह पर एक एक बिटप बिसाला। बट पीपर पाकरी रसाला॥
सैलोपरि सर सुंदर सोहा। मनि सोपान देखि मन मोहा॥ ५॥

उन शिखरोंमें एक-एकपर बरगद, पीपल, पाकर और आमका एक-एक विशाल वृक्ष है। पर्वतके ऊपर एक सुन्दर तालाब शोभित है, जिसकी मणियोंकी सीढ़ियाँ देखकर मन मोहित हो जाता है॥ ५॥

दो०—सीतल अमल मधुर जल जलज बिपुल बहुरंग।
कूजत कल रव हंस गन गुंजत मंजुल भृंग॥५६॥

उसका जल शीतल, निर्मल और मीठा है; उसमें रंग-बिरंगे बहुत-से कमल खिले हुए हैं; हंसगण मधुर स्वरसे बोल रहे हैं और भौंरे सुन्दर गुंजार कर रहे हैं॥ ५६॥

चौ०—तेहिं गिरि रुचिर बसइ खग सोई। तासु नास कल्पांत न होई॥
माया कृत गुन दोष अनेका। मोह मनोज आदि अबिबेका॥१॥

उस सुन्दर पर्वतपर वही पक्षी (काकभुशुण्डि) बसता है। उसका नाश कल्पके अन्तमें भी नहीं होता। मायारचित अनेकों गुण-दोष, मोह, काम आदि अविवेक,॥ १॥

रहे ब्यापि समस्त जग माहीं। तेहि गिरि निकट कबहुँ नहिं जाहीं॥
तहँ बसि हरिहि भजइ जिमि कागा। सो सुनु उमा सहित अनुरागा॥२॥

जो सारे जगत्‌में छा रहे हैं, उस पर्वतके पास भी कभी नहीं फटकते। वहाँ बसकर जिस प्रकार वह काक हरिको भजता है, हे उमा! उसे प्रेमसहित सुनो॥ २॥

पीपर तरु तर ध्यान सो धरई। जाप जग्य पाकरि तर करई॥
आँब छाँह कर मानस पूजा। तजि हरि भजनु काजु नहिं दूजा॥३॥

वह पीपलके वृक्षके नीचे ध्यान धरता है। पाकरके नीचे जपयज्ञ करता है। आमकी छायामें मानसिक पूजा करता है। श्रीहरिके भजनको छोड़कर उसे दूसरा कोई काम नहीं है॥ ३॥

बर तर कह हरि कथा प्रसंगा। आवहिं सुनहिं अनेक बिहंगा॥
राम चरित बिचित्र बिधि नाना। प्रेम सहित कर सादर गाना॥४॥

बरगदके नीचे वह श्रीहरिकी कथाओंके प्रसङ्ग कहता है। वहाँ अनेकों पक्षी आते और कथा सुनते हैं। वह विचित्र राम-चरित्रको अनेकों प्रकारसे प्रेमसहित आदरपूर्वक गान करता है॥ ४॥

सुनहिं सकल मति बिमल मराला। बसहिं निरंतर जे तेहिं ताला॥
जब मैं जाइ सो कौतुक देखा। उर उपजा आनंद बिसेषा॥५॥

सब निर्मल बुद्धिवाले हंस, जो सदा उस तालाबपर बसते हैं, उसे सुनते हैं। जब मैंने वहाँ जाकर यह कौतुक (दृश्य) देखा, तब मेरे हृदयमें विशेष आनन्द उत्पन्न हुआ॥ ५॥

दो०—तब कछु काल मराल तनु धरि तहँ कीन्ह निवास।
सादर सुनि रघुपति गुन पुनि आयउँ कैलास॥५७॥

तब मैंने हंसका शरीर धारणकर कुछ समय वहाँ निवास किया और श्रीरघुनाथजीके गुणोंको आदर-सहित सुनकर फिर कैलासको लौट आया॥ ५७॥

चौ०—गिरिजा कहेउँ सो सब इतिहासा। मैं जेहि समय गयउँ खग पासा॥
अब सो कथा सुनहु जेहि हेतू। गयउ काग पहिं खग कुल केतू॥१॥

हे गिरिजे! मैंने वह सब इतिहास कहा कि जिस समय मैं काकभुशुण्डिके पास गया था। अब वह कथा सुनो जिस कारणसे पक्षिकुलके ध्वजा गरुड़जी उस काकके पास गये थे॥ १॥

जब रघुनाथ कीन्हि रन क्रीड़ा। समुझत चरित होति मोहि ब्रीड़ा॥
इंद्रजीत कर आपु बँधायो। तब नारद मुनि गरुड़ पठायो॥ २॥

जब श्रीरघुनाथजीने ऐसी रणलीला की जिस लीलाका स्मरण करनेसे मुझे लज्जा होती है—मेघनादके हाथों अपनेको बँधा लिया—तब नारद मुनिने गरुड़को भेजा॥ २॥

बंधन काटि गयो उरगादा। उपजा हृदयँ प्रचंड बिषादा॥
प्रभु बंधन समुझत बहु भाँती। करत बिचार उरग आराती॥ ३॥

सर्पोंके भक्षक गरुड़जी बन्धन काटकर गये, तब उनके हृदयमें बड़ा भारी विषाद उत्पन्न हुआ। प्रभुके बन्धनको स्मरण करके सर्पोंके शत्रु गरुड़जी बहुत प्रकारसे विचार करने लगे—॥ ३॥

ब्यापक ब्रह्म बिरज बागीसा। माया मोह पार परमीसा॥
सो अवतार सुनेउँ जग माहीं। देखेउँ सो प्रभाव कछु नाहीं॥ ४॥

जो व्यापक, विकाररहित, वाणीके पति और माया-मोहसे परे ब्रह्म परमेश्वर हैं, मैंने सुना था कि जगत्‌में उन्हींका अवतार है। पर मैंने उस (अवतार) का प्रभाव कुछ भी नहीं देखा॥ ४॥

दो०—भव बंधन ते छूटहिं नर जपि जा कर नाम।
खर्ब निसाचर बाँधेउ नागपास सोइ राम॥ ५८॥

जिनका नाम जपकर मनुष्य संसारके बन्धनसे छूट जाते हैं, उन्हीं रामको एक तुच्छ राक्षसने नागपाशसे बाँध लिया॥ ५८॥

चौ०—नाना भाँति मनहि समुझावा। प्रगट न ग्यान हृदयँ भ्रम छावा॥
खेद खिन्न मन तर्क बढ़ाई। भयउ मोहबस तुम्हरिहिं नाई॥ १॥

गरुड़जीने अनेकों प्रकारसे अपने मनको समझाया। पर उन्हें ज्ञान नहीं हुआ, हृदयमें भ्रम और भी अधिक छा गया। [सन्देहजनित] दुःखसे दुःखी होकर, मनमें कुतर्क बढ़ाकर वे तुम्हारी ही भाँति मोहवश हो गये॥ १॥

ब्याकुल गयउ देवरिषि पाहीं। कहेसि जो संसय निज मन माहीं॥
सुनि नारदहि लागि अति दाया। सुनु खग प्रबल राम कै माया॥ २॥

व्याकुल होकर वे देवर्षि नारदजीके पास गये और मनमें जो सन्देह था, वह उनसे कहा। उसे सुनकर नारदको अत्यन्त दया आयी। [उन्होंने कहा—] हे गरुड़! सुनिये! श्रीरामजीकी माया बड़ी ही बलवती है॥ २॥

जो ग्यानिन्ह कर चित अपहरई। बरिआईं बिमोह मन करई॥
जेहिं बहु बार नचावा मोही। सोइ ब्यापी बिहंगपति तोही॥ ३॥

जो ज्ञानियोंके चित्तको भी भलीभाँति हरण कर लेती है और उनके मनमें जबर्दस्ती बड़ा भारी मोह उत्पन्न कर देती है तथा जिसने मुझको भी बहुत बार नचाया है, हे पक्षिराज! वही माया आपको भी व्याप गयी है॥ ३॥

महामोह उपजा उर तोरें। मिटिहि न बेगि कहें खग मोरें॥
चतुरानन पहिं जाहु खगेसा। सोइ करेहु जेहि होइ निदेसा॥ ४॥

हे गरुड़! आपके हृदयमें बड़ा भारी मोह उत्पन्न हो गया है। यह मेरे समझानेसे तुरंत नहीं मिटेगा। अतः हे पक्षिराज! आप ब्रह्माजीके पास जाइये और वहाँ जिस कामके लिये आदेश मिले, वही कीजियेगा॥ ४॥

दो०—अस कहि चले देवरिषि करत राम गुन गान।
हरि माया बल बरनत पुनि पुनि परम सुजान॥ ५९॥

ऐसा कहकर परम सुजान देवर्षि नारदजी श्रीरामजीका गुणगान करते हुए और बारंबार श्रीहरिकी मायाका बल वर्णन करते हुए चले॥ ५९॥

चौ०—तब खगपति बिरंचि पहिं गयऊ। निज संदेह सुनावत भयऊ॥
सुनि बिरंचि रामहि सिरु नावा। समुझि प्रताप प्रेम अति छावा॥ १॥

तब पक्षिराज गरुड़ ब्रह्माजीके पास गये और अपना सन्देह उन्हें कह सुनाया। उसे सुनकर ब्रह्माजीने श्रीरामचन्द्रजीको सिर नवाया और उनके प्रतापको समझकर उनके अत्यन्त प्रेम छा गया॥ १॥

मन महुँ करइ बिचार बिधाता। माया बस कबि कोबिद ग्याता॥
हरि माया कर अमिति प्रभावा। बिपुल बार जेहिं मोहि नचावा॥ २॥

ब्रह्माजी मनमें विचार करने लगे कि कवि, कोविद और ज्ञानी सभी मायाके वश हैं। भगवान्‌की मायाका प्रभाव असीम है, जिसने मुझतकको अनेकों बार नचाया है॥ २॥

अग जगमय जग मम उपराजा। नहिं आचरज मोह खगराजा॥
तब बोले बिधि गिरा सुहाई। जान महेस राम प्रभुताई॥ ३॥

यह सारा चराचर जगत् तो मेरा रचा हुआ है। जब मैं ही मायावश नाचने लगता हूँ, तब पक्षिराज गरुड़को मोह होना कोई आश्चर्य [की बात] नहीं है। तदनन्तर ब्रह्माजी सुन्दर वाणी बोले—श्रीरामजीकी महिमाको महादेवजी जानते हैं॥ ३॥

बैनतेय संकर पहिं जाहू। तात अनत पूछहु जनि काहू॥
तहँ होइहि तव संसय हानी। चलेउ बिहंग सुनत बिधि बानी॥ ४॥

हे गरुड़! तुम शंकरजीके पास जाओ। हे तात! और कहीं किसीसे न पूछना। तुम्हारे सन्देहका नाश वहीं होगा। ब्रह्माजीका वचन सुनते ही गरुड़ चल दिये॥ ४॥

दो०—परमातुर बिहंगपति आयउ तब मो पास।
जात रहेउँ कुबेर गृह रहिहु उमा कैलास॥ ६०॥

तब बड़ी आतुरता (उतावली) से पक्षिराज गरुड़ मेरे पास आये। हे उमा! उस समय मैं कुबेरके घर जा रहा था, और तुम कैलासपर थीं॥ ६०॥

चौ०—तेहिं मम पद सादर सिरु नावा। पुनि आपन संदेह सुनावा॥
सुनि ता करि बिनती मृदु बानी। प्रेम सहित मैं कहेउँ भवानी॥ १॥

गरुड़ने आदरपूर्वक मेरे चरणोंमें सिर नवाया और फिर मुझको अपना सन्देह सुनाया। हे भवानी! उनकी विनती और कोमल वाणी सुनकर मैंने प्रेमसहित उनसे कहा—॥ १॥

मिलेहु गरुड़ मारग महँ मोही। कवन भाँति समुझावौं तोही॥
तबहिं होइ सब संसय भंगा। जब बहु काल करिअ सतसंगा॥ २॥

हे गरुड़! तुम मुझे रास्तेमें मिले हो। राह चलते मैं तुम्हें किस प्रकार समझाऊँ? सब सन्देहोंका तो तभी नाश हो जब दीर्घकालतक सत्सङ्ग किया जाय॥ २॥

सुनिअ तहाँ हरिकथा सुहाई। नाना भाँति मुनिन्ह जो गाई॥
जेहि महुँ आदि मध्य अवसाना। प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना॥ ३॥

और वहाँ (सत्सङ्गमें) सुन्दर हरिकथा सुनी जाय, जिसे मुनियोंने अनेकों प्रकारसे गाया है और जिसके आदि, मध्य और अन्तमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ही प्रतिपाद्य प्रभु हैं॥ ३॥

नित हरि कथा होत जहँ भाई। पठवउँ तहाँ सुनहु तुम्ह जाई॥
जाइहि सुनत सकल संदेहा। राम चरन होइहि अति नेहा॥ ४॥

हे भाई! जहाँ प्रतिदिन हरिकथा होती है, तुमको मैं वहीं भेजता हूँ, तुम जाकर उसे सुनो। उसे सुनते ही तुम्हारा सब सन्देह दूर हो जायगा और तुम्हें श्रीरामजीके चरणोंमें अत्यन्त प्रेम होगा॥ ४॥

दो०—बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥ ६१॥

सत्संगके बिना हरिकी कथा सुननेको नहीं मिलती, उसके बिना मोह नहीं भागता और मोहके गये बिना श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें दृढ़ (अचल) प्रेम नहीं होता॥ ६१॥

चौ०—मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा। किएँ जोग तप ग्यान बिरागा॥
उत्तर दिसि सुंदर गिरि नीला। तहँ रह काकभुसुंडि सुसीला॥ १॥

बिना प्रेमके केवल योग, तप, ज्ञान और वैराग्यादिके करनेसे श्रीरघुनाथजी नहीं मिलते। [अतएव तुम सत्संगके लिये वहाँ जाओ जहाँ] उत्तर दिशामें एक सुन्दर नील पर्वत है। वहाँ परम सुशील काकभुशुण्डिजी रहते हैं॥ १॥

राम भगति पथ परम प्रबीना। ग्यानी गुन गृह बहु कालीना॥
राम कथा सो कहइ निरंतर। सादर सुनहिं बिबिध बिहंगबर॥ २॥

वे रामभक्तिके मार्गमें परम प्रवीण हैं, ज्ञानी हैं, गुणोंके धाम हैं और बहुत कालके हैं। वे निरन्तर श्रीरामचन्द्रजीकी कथा कहते रहते हैं, जिसे भाँति-भाँतिके श्रेष्ठ पक्षी आदरसहित सुनते हैं॥ २॥

जाइ सुनहु तहँ हरि गुन भूरी। होइहि मोह जनित दुख दूरी॥
मैं जब तेहि सब कहा बुझाई। चलेउ हरषि मम पद सिरु नाई॥ ३॥

वहाँ जाकर श्रीहरिके गुणसमूहोंको सुनो। उनके सुननेसे मोहसे उत्पन्न तुम्हारा दुःख दूर हो जायगा। मैंने उसे जब सब समझाकर कहा, तब वह मेरे चरणोंमें सिर नवाकर हर्षित होकर चला गया॥ ३॥

ताते उमा न मैं समुझावा। रघुपति कृपाँ मरमु मैं पावा॥
होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना। सो खोवै चह कृपानिधाना॥ ४॥

हे उमा! मैंने उसको इसीलिये नहीं समझाया कि मैं श्रीरघुनाथजीकी कृपासे उसका मर्म (भेद) पा गया था। उसने कभी अभिमान किया होगा, जिसको कृपानिधान श्रीरामजी नष्ट करना चाहते हैं॥ ४॥

कछु तेहि ते पुनि मैं नहिं राखा। समुझइ खग खगही कै भाषा॥
प्रभु माया बलवंत भवानी। जाहि न मोह कवन अस ग्यानी॥५॥

फिर कुछ इस कारण भी मैंने उसको अपने पास नहीं रखा कि पक्षी पक्षीकी ही बोली समझते हैं। हे भवानी! प्रभुकी माया [बड़ी ही] बलवती है, ऐसा कौन ज्ञानी है, जिसे वह न मोह ले?॥ ५॥

दो०—ग्यानी भगत सिरोमनि त्रिभुवनपति कर जान।
ताहि मोह माया नर पावँर करहिं गुमान॥ ६२ (क)॥

जो ज्ञानियोंमें और भक्तोंमें शिरोमणि हैं एवं त्रिभुवनपति भगवान्‌के वाहन हैं, उन गरुड़को भी मायाने मोह लिया। फिर भी नीच मनुष्य मूर्खतावश घमंड किया करते हैं॥ ६२ (क)॥

सिव बिरंचि कहुँ मोहइ को है बपुरा आन।
अस जियँ जानि भजहिं मुनि माया पति भगवान॥ ६२ (ख)॥

यह माया जब शिवजी और ब्रह्माजीको भी मोह लेती है, तब दूसरा बेचारा क्या चीज है? जीमें ऐसा जानकर ही मुनिलोग उस मायाके स्वामी भगवान्‌का भजन करते हैं॥ ६२ (ख)॥

चौ०—गयउ गरुड़ जहँ बसइ भुसुंडा। मति अकुंठ हरि भगति अखंडा॥
देखि सैल प्रसन्न मन भयऊ। माया मोह सोच सब गयऊ॥ १॥

गरुड़जी वहाँ गये जहाँ निर्बाध बुद्धि और पूर्ण भक्तिवाले काकभुशुण्डिजी बसते थे। उस पर्वतको देखकर उनका मन प्रसन्न हो गया और [उसके दर्शनसे ही] सब माया, मोह तथा सोच जाता रहा॥ १॥

करि तड़ाग मज्जन जलपाना। बट तर गयउ हृदयँ हरषाना॥
बृद्ध बृद्ध बिहंग तहँ आए। सुनै राम के चरित सुहाए॥ २॥

तालाबमें स्नान और जलपान करके वे प्रसन्नचित्तसे वटवृक्षके नीचे गये। वहाँ श्रीरामजीके सुन्दर चरित्र सुननेके लिये बूढ़े-बूढ़े पक्षी आये हुए थे॥ २॥

कथा अरंभ करै सोइ चाहा। तेही समय गयउ खगनाहा॥
आवत देखि सकल खगराजा। हरषेउ बायस सहित समाजा॥ ३॥

भुशुण्डिजी कथा आरम्भ करना ही चाहते थे कि उसी समय पक्षिराज गरुड़जी वहाँ जा पहुँचे। पक्षियोंके राजा गरुड़जीको आते देखकर काकभुशुण्डिजीसहित सारा पक्षिसमाज हर्षित हुआ॥ ३॥

अति आदर खगपति कर कीन्हा। स्वागत पूछि सुआसन दीन्हा॥
करि पूजा समेत अनुरागा। मधुर बचन तब बोलेउ कागा॥ ४॥

उन्होंने पक्षिराज गरुड़जीका बहुत ही आदर-सत्कार किया और स्वागत (कुशल)

पूछकर बैठनेके लिये सुन्दर आसन दिया। फिर प्रेमसहित पूजा करके काकभुशुण्डिजी मधुर वचन बोले—॥ ४॥

दो०—नाथ कृतारथ भयउँ मैं तव दरसन खगराज।
आयसु देहु सो करौं अब प्रभु आयहु केहि काज॥ ६३ (क)॥

हे नाथ! हे पक्षिराज! आपके दर्शनसे मैं कृतार्थ हो गया। आप जो आज्ञा दें, मैं अब वही करूँ। हे प्रभो! आप किस कार्यके लिये आये हैं?॥ ६३ (क)॥

सदा कृतारथ रूप तुम्ह कह मृदु बचन खगेस।
जेहि कै अस्तुति सादर निज मुख कीन्हि महेस॥ ६३ (ख)॥

पक्षिराज गरुड़जीने कोमल वचन कहे—आप तो सदा ही कृतार्थरूप हैं, जिनकी बड़ाई स्वयं महादेवजीने आदरपूर्वक अपने श्रीमुखसे की है॥ ६३ (ख)॥

चौ०—सुनहु तात जेहि कारन आयउँ। सो सब भयउ दरस तव पायउँ॥
देखि परम पावन तव आश्रम। गयउ मोह संसय नाना भ्रम॥ १॥

हे तात! सुनिये, मैं जिस कारणसे आया था, वह सब कार्य तो यहाँ आते ही पूरा हो गया। फिर आपके दर्शन भी प्राप्त हो गये। आपका परम पवित्र आश्रम देखकर ही मेरा मोह, सन्देह और अनेक प्रकारके भ्रम सब जाते रहे॥ १॥

अब श्रीराम कथा अति पावनि। सदा सुखद दुख पुंज नसावनि॥
सादर तात सुनावहु मोही। बार बार बिनवउँ प्रभु तोही॥ २॥

अब हे तात! आप मुझे श्रीरामजीकी अत्यन्त पवित्र करनेवाली, सदा सुख देनेवाली और दु:खसमूहका नाश करनेवाली कथा आदरसहित सुनाइये। हे प्रभो! मैं बार-बार आपसे यही विनती करता हूँ॥ २॥

सुनत गरुड़ कै गिरा बिनीता। सरल सुप्रेम सुखद सुपुनीता॥
भयउ तासु मन परम उछाहा। लाग कहै रघुपति गुन गाहा॥ ३॥

गरुड़जीकी विनम्र, सरल, सुन्दर प्रेमयुक्त, सुखप्रद और अत्यन्त पवित्र वाणी सुनते ही भुशुण्डिजीके मनमें परम उत्साह हुआ और वे श्रीरघुनाथजीके गुणोंकी कथा कहने लगे॥ ३॥

प्रथमहिं अति अनुराग भवानी। रामचरित सर कहेसि बखानी॥
पुनि नारद कर मोह अपारा। कहेसि बहुरि रावन अवतारा॥ ४॥

हे भवानी! पहले तो उन्होंने बड़े ही प्रेमसे रामचरितमानस सरोवरका रूपक समझाकर कहा। फिर नारदजीका अपार मोह और फिर रावणका अवतार कहा॥ ४॥

प्रभु अवतार कथा पुनि गाई। तब सिसु चरित कहेसि मन लाई॥ ५॥

फिर प्रभुके अवतारकी कथा वर्णन की। तदनन्तर मन लगाकर श्रीरामजीकी बाललीलाएँ कहीं॥ ५॥

दो०—बालचरित कहि बिबिधि बिधि मन महँ परम उछाह।
रिषि आगवन कहेसि पुनि श्रीरघुबीर बिबाह॥ ६४॥

मनमें परम उत्साह भरकर अनेकों प्रकारकी बाललीलाएँ कहकर, फिर ऋषि विश्वामित्रजीका अयोध्या आना और श्रीरघुवीरजीका विवाह वर्णन किया॥ ६४॥

चौ०—बहुरि राम अभिषेक प्रसंगा। पुनि नृप बचन राज रस भंगा॥
पुरबासिन्ह कर बिरह बिषादा। कहेसि राम लछिमन संबादा॥ १॥

फिर श्रीरामजीके राज्याभिषेकका प्रसङ्ग, फिर राजा दशरथजीके वचनसे राज-रस (राज्याभिषेकके आनन्द)में भङ्ग पड़ना, फिर नगरनिवासियोंका विरह, विषाद और श्रीराम-लक्ष्मणका संवाद (बातचीत) कहा॥ १॥

बिपिन गवन केवट अनुरागा। सुरसरि उतरि निवास प्रयागा॥
बालमीक प्रभु मिलन बखाना। चित्रकूट जिमि बसे भगवाना॥ २॥

श्रीरामका वनगमन, केवटका प्रेम, गङ्गाजीसे पार उतरकर प्रयागमें निवास, वाल्मीकिजी और प्रभु श्रीरामजीका मिलन और जैसे भगवान् चित्रकूटमें बसे, वह सब कहा॥ २॥

सचिवागवन नगर नृप मरना। भरतागवन प्रेम बहु बरना॥
करि नृप क्रिया संग पुरबासी। भरत गए जहँ प्रभु सुखरासी॥ ३॥

फिर मन्त्री सुमन्त्रजीका नगरमें लौटना, राजा दशरथजीका मरण, भरतजीका [ननिहालसे] अयोध्यामें आना और उनके प्रेमका बहुत वर्णन किया। राजाकी अन्त्येष्टि क्रिया करके नगरनिवासियोंको साथ लेकर भरतजी वहाँ गये जहाँ सुखकी राशि प्रभु श्रीरामचन्द्रजी थे॥ ३॥

पुनि रघुपति बहु बिधि समुझाए। लै पादुका अवधपुर आए॥
भरत रहनि सुरपति सुत करनी। प्रभु अरु अत्रि भेंट पुनि बरनी॥ ४॥

फिर श्रीरघुनाथजीने उनको बहुत प्रकारसे समझाया, जिससे वे खड़ाऊँ लेकर अयोध्यापुरी लौट आये, यह सब कथा कही। भरतजीकी नन्दिग्राममें रहनेकी रीति, इन्द्रपुत्र जयन्तकी नीच करनी और फिर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी और अत्रिजीका मिलाप वर्णन किया॥ ४॥

दो०—कहि बिराध बध जेहि बिधि देह तजी सरभंग।
बरनि सुतीछन प्रीति पुनि प्रभु अगस्ति सतसंग॥ ६५॥

जिस प्रकार विराधका वध हुआ और शरभंगजीने शरीर त्याग किया, वह प्रसंग कहकर, फिर सुतीक्ष्णजीका प्रेम वर्णन करके प्रभु और अगस्त्यजीका सत्संग वृत्तान्त कहा॥ ६५॥

चौ०—कहि दंडक बन पावनताई। गीध मइत्री पुनि तेहिं गाई॥
पुनि प्रभु पंचबटीं कृत बासा। भंजी सकल मुनिन्ह की त्रासा॥ १॥

दण्डकवनका पवित्र करना कहकर फिर भुशुण्डिजीने गृध्रराजके साथ मित्रताका वर्णन किया। फिर जिस प्रकार प्रभुने पञ्चवटीमें निवास किया और सब मुनियोंके भयका नाश किया,॥ १॥

पुनि लछिमन उपदेस अनूपा। सूपनखा जिमि कीन्हि कुरूपा॥
खर दूषन बध बहुरि बखाना। जिमि सब मरमु दसानन जाना॥ २॥

और फिर जैसे लक्ष्मणजीको अनुपम उपदेश दिया और शूर्पणखाको कुरूप किया, वह सब वर्णन किया। फिर खर-दूषणवध और जिस प्रकार रावणने सब समाचार जाना, वह बखानकर कहा,॥ २॥

दसकंधर मारीच बतकही। जेहि बिधि भई सो सब तेहिं कही॥
पुनि माया सीता कर हरना। श्रीरघुबीर बिरह कछु बरना॥ ३॥

तथा जिस प्रकार रावण और मारीचकी बातचीत हुई, वह सब उन्होंने कही। फिर मायासीताका हरण और श्रीरघुवीरके विरहका कुछ वर्णन किया॥ ३॥

पुनि प्रभु गीध क्रिया जिमि कीन्ही। बधि कबंध सबरिहि गति दीन्ही॥
बहुरि बिरह बरनत रघुबीरा। जेहि बिधि गए सरोबर तीरा॥ ४॥

फिर प्रभुने गिद्ध जटायुकी जिस प्रकार क्रिया की, कबन्धका वध करके शबरीको परमगति दी और फिर जिस प्रकार विरह-वर्णन करते हुए श्रीरघुवीरजी पम्पासरके तीरपर गये, वह सब कहा॥ ४॥

दो०—प्रभु नारद संबाद कहि मारुति मिलन प्रसंग।
पुनि सुग्रीव मिताई बालि प्रान कर भंग॥ ६६ (क)॥

प्रभु और नारदजीका संवाद और मारुतिके मिलनेका प्रसंग कहकर फिर सुग्रीवसे मित्रता और बालिके प्राणनाशका वर्णन किया॥ ६६ (क)॥

कपिहि तिलक करि प्रभु कृत सैल प्रबरषन बास।
बरनन बर्षा सरद अरु राम रोष कपि त्रास॥ ६६ (ख)॥

सुग्रीवका राजतिलक करके प्रभुने प्रवर्षण पर्वतपर निवास किया, वह तथा वर्षा और शरद्का वर्णन, श्रीरामजीका सुग्रीवपर रोष और सुग्रीवका भय आदि प्रसंग कहे॥ ६६ (ख)॥

चौ०—जेहि बिधि कपिपति कीस पठाए। सीता खोज सकल दिसि धाए॥
बिबर प्रबेस कीन्ह जेहि भाँती। कपिन्ह बहोरि मिला संपाती॥ १॥

जिस प्रकार वानरराज सुग्रीवने वानरोंको भेजा और वे सीताजीकी खोजमें जिस प्रकार सब दिशाओंमें गये, जिस प्रकार उन्होंने बिलमें प्रवेश किया और फिर जैसे वानरोंको सम्पाती मिला, वह कथा कही॥ १॥

सुनि सब कथा समीरकुमारा। नाघत भयउ पयोधि अपारा॥
लंकाँ कपि प्रबेस जिमि कीन्हा। पुनि सीतहि धीरजु जिमि दीन्हा॥ २॥

सम्पातीसे सब कथा सुनकर पवनपुत्र हनुमान्‌जी जिस तरह अपार समुद्रको लाँघ गये, फिर हनुमान्‌जीने जैसे लङ्कामें प्रवेश किया और फिर जैसे सीताजीको धीरज दिया, सो सब कहा॥ २॥

बन उजारि रावनहि प्रबोधी। पुर दहि नाघेउ बहुरि पयोधी॥
आए कपि सब जहँ रघुराई। बैदेही की कुसल सुनाई॥ ३॥

अशोकवनको उजाड़कर, रावणको समझाकर, लङ्कापुरीको जलाकर फिर जैसे उन्होंने समुद्रको लाँघा और जिस प्रकार सब वानर वहाँ आये जहाँ श्रीरघुनाथजी थे और आकर श्रीजानकीजीकी कुशल सुनायी, ॥ ३ ॥

सेन समेति जथा रघुबीरा। उतरे जाइ बारिनिधि तीरा॥
मिला बिभीषन जेहि बिधि आई। सागर निग्रह कथा सुनाई॥४॥

फिर जिस प्रकार सेनासहित श्रीरघुवीर जाकर समुद्रके तटपर उतरे और जिस प्रकार विभीषणजी आकर उनसे मिले, वह सब और समुद्रके बाँधनेकी कथा उसने सुनायी॥ ४॥

दो०—सेतु बाँधि कपि सेन जिमि उतरी सागर पार।
गयउ बसीठी बीरबर जेहि बिधि बालिकुमार॥ ६७ (क)॥

पुल बाँधकर जिस प्रकार वानरोंकी सेना समुद्रके पार उतरी और जिस प्रकार वीरश्रेष्ठ बालिपुत्र अङ्गद दूत बनकर गये, वह सब कहा॥ ६७ (क)॥

निसिचर कीस लराई बरनिसि बिबिध प्रकार।
कुंभकरन घननाद कर बल पौरुष संघार॥ ६७ (ख)॥

फिर राक्षसों और वानरोंके युद्धका अनेकों प्रकारसे वर्णन किया। फिर कुम्भकर्ण और मेघनादके बल, पुरुषार्थ और संहारकी कथा कही॥ ६७ (ख)॥

चौ०—निसिचर निकर मरन बिधि नाना। रघुपति रावन समर बखाना॥
रावन बध मंदोदरि सोका। राज बिभीषन देव असोका॥ १॥

नाना प्रकारके राक्षससमूहोंके मरण तथा श्रीरघुनाथजी और रावणके अनेक प्रकारके युद्धका वर्णन किया। रावणवध, मन्दोदरीका शोक, विभीषणका राज्याभिषेक और देवताओंका शोकरहित होना कहकर, ॥ १ ॥

सीता रघुपति मिलन बहोरी। सुरन्ह कीन्हि अस्तुति कर जोरी॥
पुनि पुष्पक चढ़ि कपिन्ह समेता। अवध चले प्रभु कृपा निकेता॥ २॥

फिर सीताजी और श्रीरघुनाथजीका मिलाप कहा। जिस प्रकार देवताओंने हाथ जोड़कर स्तुति की और फिर जैसे वानरोंसमेत पुष्पकविमानपर चढ़कर कृपाधाम प्रभु अवधपुरीको चले, वह कहा॥ २॥

जेहि बिधि राम नगर निज आए। बायस बिसद चरित सब गाए॥
कहेसि बहोरि राम अभिषेका। पुर बरनत नृपनीति अनेका॥ ३॥

जिस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी अपने नगर (अयोध्या) में आये, वे सब उज्ज्वल चरित्र काकभुशुण्डिजीने विस्तारपूर्वक वर्णन किये। फिर उन्होंने श्रीरामजीका राज्याभिषेक कहा। [शिवजी कहते हैं—] अयोध्यापुरीका और अनेक प्रकारकी राजनीतिका वर्णन करते हुए— ॥ ३ ॥

कथा समस्त भुसुंड बखानी। जो मैं तुम्ह सन कही भवानी॥
सुनि सब राम कथा खगनाहा। कहत बचन मन परम उछाहा॥ ४॥

भुशुण्डिजीने वह सब कथा कही जो हे भवानी! मैंने तुमसे कही। सारी रामकथा सुनकर पक्षिराज गरुड़जी मनमें बहुत उत्साहित (आनन्दित) होकर वचन कहने लगे—॥ ४॥

सो०—गयउ मोर संदेह सुनेउँ सकल रघुपति चरित।
भयउ राम पद नेह तव प्रसाद बायस तिलक॥ ६८ (क)॥

श्रीरघुनाथजीके सब चरित्र मैंने सुने, जिससे मेरा सन्देह जाता रहा। हे काकशिरोमणि! आपके अनुग्रहसे श्रीरामजीके चरणोंमें मेरा प्रेम हो गया॥ ६८ (क)॥

मोहि भयउ अति मोह प्रभु बंधन रन महुँ निरखि।
चिदानंद संदोह राम बिकल कारन कवन॥ ६८ (ख)॥

युद्धमें प्रभुका नागपाशसे बन्धन देखकर मुझे अत्यन्त मोह हो गया था कि श्रीरामजी तो सच्चिदानन्दघन हैं, वे किस कारण व्याकुल हैं॥ ६८ (ख)॥

चौ०—देखि चरित अति नर अनुसारी। भयउ हृदयँ मम संसय भारी॥
सोइ भ्रम अब हित करि मैं माना। कीन्ह अनुग्रह कृपानिधाना॥ १॥

बिलकुल ही लौकिक मनुष्योंका-सा चरित्र देखकर मेरे हृदयमें भारी सन्देह हो गया। मैं अब उस भ्रम (सन्देह) को अपने लिये हित करके समझता हूँ। कृपानिधानने मुझपर यह बड़ा अनुग्रह किया॥ १॥

जो अति आतप ब्याकुल होई। तरु छाया सुख जानइ सोई॥
जौं नहिं होत मोह अति मोही। मिलतेउँ तात कवन बिधि तोही॥ २॥

जो धूपसे अत्यन्त व्याकुल होता है, वही वृक्षकी छायाका सुख जानता है। हे तात! यदि मुझे अत्यन्त मोह न होता तो मैं आपसे किस प्रकार मिलता?॥ २॥

सुनतेउँ किमि हरि कथा सुहाई। अति बिचित्र बहु बिधि तुम्ह गाई॥
निगमागम पुरान मत एहा। कहहिं सिद्ध मुनि नहिं संदेहा॥ ३॥

और कैसे अत्यन्त विचित्र यह सुन्दर हरिकथा सुनता; जो आपने बहुत प्रकारसे गायी है? वेद, शास्त्र और पुराणोंका यही मत है; सिद्ध और मुनि भी यही कहते हैं, इसमें सन्देह नहीं कि—॥ ३॥

संत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही। चितवहिं राम कृपा करि जेही॥
राम कृपाँ तव दरसन भयऊ। तव प्रसाद सब संसय गयऊ॥ ४॥

शुद्ध (सच्चे) संत उसीको मिलते हैं जिसे श्रीरामजी कृपा करके देखते हैं। श्रीरामजीकी कृपासे मुझे आपके दर्शन हुए और आपकी कृपासे मेरा सन्देह चला गया॥ ४॥

दो०—सुनि बिहंगपति बानी सहित बिनय अनुराग।
पुलक गात लोचन सजल मन हरषेउ अति काग॥ ६९ (क)॥

पक्षिराज गरुड़जीकी विनय और प्रेमयुक्त वाणी सुनकर काकभुशुण्डिजीका शरीर पुलकित हो गया, उनके नेत्रोंमें जल भर आया और वे मनमें अत्यन्त हर्षित हुए॥ ६९ (क)॥

श्रोता सुमति सुसील सुचि कथा रसिक हरिदास।
पाइ उमा अति गोप्यमपि सज्जन करहिं प्रकास॥ ६९ (ख)॥

हे उमा! सुन्दर बुद्धिवाले, सुशील, पवित्र कथाके प्रेमी और हरिके सेवक श्रोताको पाकर सज्जन अत्यन्त गोपनीय (सबके सामने प्रकट न करनेयोग्य) रहस्यको भी प्रकट कर देते हैं॥ ६९ (ख)॥

चौ०—बोलेउ काकभसुंड बहोरी। नभग नाथ पर प्रीति न थोरी॥
सब बिधि नाथ पूज्य तुम्ह मेरे। कृपापात्र रघुनायक केरे॥ १॥

काकभुशुण्डिजीने फिर कहा—पक्षिराजपर उनका प्रेम कम न था (अर्थात् बहुत था) हे नाथ! आप सब प्रकारसे मेरे पूज्य हैं और श्रीरघुनाथजीके कृपापात्र हैं॥ १॥

तुम्हहि न संसय मोह न माया। मो पर नाथ कीन्हि तुम्ह दाया॥
पठइ मोह मिस खगपति तोही। रघुपति दीन्हि बड़ाई मोही॥ २॥

आपको न सन्देह है और न मोह अथवा माया ही है। हे नाथ! आपने तो मुझपर दया की है। हे पक्षिराज! मोहके बहाने श्रीरघुनाथजीने आपको यहाँ भेजकर मुझे बड़ाई दी है॥ २॥

तुम्ह निज मोह कही खग साईं। सो नहिं कछु आचरज गोसाईं॥
नारद भव बिरंचि सनकादी। जे मुनिनायक आतमबादी॥ ३॥

हे पक्षियोंके स्वामी! आपने अपना मोह कहा, सो हे गोसाईं! यह कुछ आश्चर्य नहीं है। नारदजी, शिवजी, ब्रह्माजी और सनकादि जो आत्मतत्त्वके मर्मज्ञ और उसका उपदेश करनेवाले श्रेष्ठ मुनि हैं॥ ३॥

मोह न अंध कीन्ह केहि केही। को जग काम नचाव न जेही॥
तृस्नाँ केहि न कीन्ह बौराहा। केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा॥ ४॥

उनमेंसे भी किस-किसको मोहने अंधा (विवेकशून्य) नहीं किया? जगत्‌में ऐसा कौन है जिसे कामने न नचाया हो? तृष्णाने किसको मतवाला नहीं बनाया? क्रोधने किसका हृदय नहीं जलाया?॥ ४॥

दो०—ग्यानी तापस सूर कबि कोबिद गुन आगार।
केहि कै लोभ बिडंबना कीन्हि न एहिं संसार॥ ७० (क)॥

इस संसारमें ऐसा कौन ज्ञानी, तपस्वी, शूरवीर, कवि, विद्वान् और गुणोंका धाम है, जिसकी लोभने विडम्बना (मिट्टी पलीद) न की हो॥ ७० (क)॥

श्री मद बक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि।
मृगलोचनि के नैन सर को अस लाग न जाहि॥ ७० (ख)॥

लक्ष्मीके मदने किसको टेढ़ा और प्रभुताने किसको बहरा नहीं कर दिया? ऐसा कौन है, जिसे मृगनयनी (युवती स्त्री) के नेत्र-बाण न लगे हों?॥ ७० (ख)॥

चौ०—गुन कृत सन्यपात नहिं केही। कोउ न मान मद तजेउ निबेही॥
जोबन ज्वर केहि नहिं बलकावा। ममता केहि कर जस न नसावा॥ १॥

[रज, तम आदि] गुणोंका किया हुआ सन्निपात किसे नहीं हुआ? ऐसा कोई नहीं है जिसे मान और मदने अछूता छोड़ा हो। यौवनके ज्वरने किसे आपेसे बाहर नहीं किया? ममताने किसके यशका नाश नहीं किया?॥ १॥

मच्छर काहि कलंक न लावा। काहि न सोक समीर डोलावा॥
चिंता साँपिनि को नहिं खाया। को जग जाहि न ब्यापी माया॥ २॥

मत्सर (डाह) ने किसको कलङ्क नहीं लगाया? शोकरूपी पवनने किसे नहीं हिला दिया? चिन्तारूपी साँपिनने किसे नहीं खा लिया? जगत्‌में ऐसा कौन है, जिसे माया न व्यापी हो?॥ २॥

कीट मनोरथ दारु सरीरा। जेहि न लाग घुन को अस धीरा॥
सुत बित लोक ईषना तीनी। केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी॥ ३॥

मनोरथ कीड़ा है, शरीर लकड़ी है। ऐसा धैर्यवान् कौन है, जिसके शरीरमें यह कीड़ा न लगा हो? पुत्रकी, धनकी और लोकप्रतिष्ठाकी—इन तीन प्रबल इच्छाओंने किसकी बुद्धिको मलिन नहीं कर दिया (बिगाड़ नहीं दिया)?॥ ३॥

यह सब माया कर परिवारा। प्रबल अमिति को बरनै पारा॥
सिव चतुरानन जाहि डेराहीं। अपर जीव केहि लेखे माहीं॥ ४॥

यह सब मायाका बड़ा बलवान् परिवार है। यह अपार है, इसका वर्णन कौन कर सकता है? शिवजी और ब्रह्माजी भी जिससे डरते हैं, तब दूसरे जीव तो किस गिनतीमें हैं?॥ ४॥

दो०—ब्यापि रहेउ संसार महुँ माया कटक प्रचंड।
सेनापति कामादि भट दंभ कपट पाषंड॥ ७१ (क)॥

मायाकी प्रचण्ड सेना संसारभरमें छायी हुई है। कामादि (काम, क्रोध और लोभ) उसके सेनापति हैं और दम्भ, कपट और पाखण्ड योद्धा हैं॥ ७१ (क)॥

सो दासी रघुबीर कै समुझें मिथ्या सोपि।
छूट न राम कृपा बिनु नाथ कहउँ पद रोपि॥ ७१ (ख)॥

वह माया श्रीरघुवीरकी दासी है। यद्यपि समझ लेनेपर वह मिथ्या ही है, किन्तु वह श्रीरामजीकी कृपाके बिना छूटती नहीं। हे नाथ! यह मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ॥ ७१ (ख)॥

चौ०—जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहुँ न पावा॥
सोइ प्रभु भ्रू बिलास खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा॥ १॥

जो माया सारे जगत्‌को नचाती है और जिसका चरित्र (करनी) किसीने नहीं लख पाया, हे खगराज गरुड़जी! वही माया प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी भृकुटीके इशारेपर अपने समाज (परिवार) सहित नटीकी तरह नाचती है॥ १॥

सोइ सच्चिदानंद घन रामा। अज बिग्यान रूप बल धामा॥
ब्यापक ब्याप्य अखंड अनंता। अखिल अमोघसक्ति भगवंता॥ २॥

श्रीरामजी वही सच्चिदानन्दघन हैं जो अजन्मा, विज्ञानस्वरूप, रूप और बलके धाम, सर्वव्यापक एवं व्याप्य (सर्वरूप), अखण्ड, अनन्त, सम्पूर्ण, अमोघशक्ति (जिसकी शक्ति कभी व्यर्थ नहीं होती) और छः ऐश्वर्योंसे युक्त भगवान् हैं॥ २॥

अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सबदरसी अनवद्य अजीता॥
निर्मम निराकार निरमोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा॥ ३॥

वे निर्गुण (मायाके गुणोंसे रहित), महान्, वाणी और इन्द्रियोंसे परे, सब कुछ देखनेवाले, निर्दोष, अजेय, ममतारहित, निराकार (मायिक आकारसे रहित), मोहरहित, नित्य, मायारहित, सुखकी राशि, ॥ ३ ॥

प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी॥
इहाँ मोह कर कारन नाहीं। रबि सन्मुख तम कबहुँ कि जाहीं॥४॥

प्रकृतिसे परे, प्रभु (सर्वसमर्थ), सदा सबके हृदयमें बसनेवाले, इच्छारहित, विकाररहित, अविनाशी ब्रह्म हैं। यहाँ (श्रीराममें) मोहका कारण ही नहीं है। क्या अन्धकारका समूह कभी सूर्यके सामने जा सकता है?॥ ४॥

दो०—भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप॥ ७२ (क)॥

भगवान् प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने भक्तोंके लिये राजाका शरीर धारण किया और साधारण मनुष्योंके-से अनेकों परम पावन चरित्र किये॥ ७२ (क)॥

जथा अनेक बेष धरि नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ आपुन होइ न सोइ॥ ७२ (ख)॥

जैसे कोई नट (खेल करनेवाला) अनेक वेष धारण करके नृत्य करता है, और वही-वही (जैसा वेष होता है, उसीके अनुकूल) भाव दिखलाता है, पर स्वयं वह उनमेंसे कोई हो नहीं जाता,॥ ७२ (ख)॥

चौ०—असि रघुपति लीला उरगारी। दनुज बिमोहनि जन सुखकारी॥
जे मति मलिन बिषय बस कामी। प्रभु पर मोह धरहिं इमि स्वामी॥ १॥

हे गरुडजी! ऐसी ही श्रीरघुनाथजीकी यह लीला है, जो राक्षसोंको विशेष मोहित करनेवाली और भक्तोंको सुख देनेवाली है। हे स्वामी! जो मनुष्य मलिनबुद्धि, विषयोंके वश और कामी हैं, वे ही प्रभुपर इस प्रकार मोहका आरोप करते हैं॥ १॥

नयन दोष जा कहँ जब होई। पीत बरन ससि कहुँ कह सोई॥
जब जेहि दिसि भ्रम होइ खगेसा। सो कह पच्छिम उयउ दिनेसा॥ २॥

जब जिसको [कवँल आदि] नेत्रदोष होता है, तब वह चन्द्रमाको पीले रंगका कहता है। हे पक्षिराज! जब जिसे दिशाभ्रम होता है, तब वह कहता है कि सूर्य पश्चिममें उदय हुआ है॥ २॥

नौकारूढ़ चलत जग देखा। अचल मोह बस आपुहि लेखा॥
बालक भ्रमहिं न भ्रमहिं गृहादी। कहहिं परस्पर मिथ्याबादी॥ ३॥

नौकापर चढ़ा हुआ मनुष्य जगत्को चलता हुआ देखता है और मोहवश अपनेको अचल समझता है। बालक घूमते (चक्राकार दौड़ते) हैं, घर आदि नहीं घूमते। पर वे आपसमें एक-दूसरेको झूठा कहते हैं॥ ३॥

हरि बिषइक अस मोह बिहंगा। सपनेहुँ नहिं अग्यान प्रसंगा॥
मायाबस मतिमंद अभागी। हृदयँ जमनिका बहुबिधि लागी॥ ४॥

हे गरुड़जी! श्रीहरिके विषयमें मोहकी कल्पना भी ऐसी ही है, भगवान्में तो

स्वप्नमें भी अज्ञानका प्रसंग (अवसर) नहीं है। किन्तु जो मायाके वश, मन्दबुद्धि और भाग्यहीन हैं, और जिनके हृदयपर अनेकों प्रकारके परदे पड़े हैं,॥ ४॥

ते सठ हठ बस संसय करहीं। निज अग्यान राम पर धरहीं॥ ५॥

वे मूर्ख हठके वश होकर सन्देह करते हैं और अपना अज्ञान श्रीरामजीपर आरोपित करते हैं॥ ५॥

दो०—काम क्रोध मद लोभ रत गृहासक्त दुखरूप।
ते किमि जानहिं रघुपतिहि मूढ़ परे तम कूप॥ ७३ (क)॥

जो काम, क्रोध, मद और लोभमें रत हैं और दुःखरूप घरमें आसक्त हैं, वे श्रीरघुनाथजीको कैसे जान सकते हैं? वे मूर्ख तो अन्धकाररूपी कूएँमें पड़े हुए हैं॥ ७३ (क)॥

निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ॥ ७३ (ख)॥

निर्गुण रूप अत्यन्त सुलभ (सहज ही समझमें आ जानेवाला) है, परन्तु [गुणातीत दिव्य] सगुण रूपको कोई नहीं जानता। इसलिये उन सगुण भगवान्‌के अनेक प्रकारके सुगम और अगम चरित्रोंको सुनकर मुनियोंके भी मनको भ्रम हो जाता है॥ ७३(ख)॥

चौ०—सुनु खगेस रघुपति प्रभुताई। कहउँ जथामति कथा सुहाई॥
जेहि बिधि मोह भयउ प्रभु मोही। सो सब कथा सुनावउँ तोही॥ १॥

हे पक्षिराज गरुड़जी! श्रीरघुनाथजीकी प्रभुता सुनिये। मैं अपनी बुद्धिके अनुसार वह सुहावनी कथा कहता हूँ। हे प्रभो! मुझे जिस प्रकार मोह हुआ, वह सब कथा भी आपको सुनाता हूँ॥ १॥

राम कृपा भाजन तुम्ह ताता। हरि गुन प्रीति मोहि सुखदाता॥
ताते नहिं कछु तुम्हहि दुरावउँ। परम रहस्य मनोहर गावउँ॥ २॥

हे तात! आप श्रीरामजीके कृपापात्र हैं। श्रीहरिके गुणोंमें आपकी प्रीति है, इसीलिये आप मुझे सुख देनेवाले हैं। इसीसे मैं आपसे कुछ भी नहीं छिपाता और अत्यन्त रहस्यकी बातें आपको गाकर सुनाता हूँ॥ २॥

सुनहु राम कर सहज सुभाऊ। जन अभिमान न राखहिं काऊ॥
संसृत मूल सूलप्रद नाना। सकल सोक दायक अभिमाना॥ ३॥

श्रीरामचन्द्रजीका सहज स्वभाव सुनिये। वे भक्तमें अभिमान कभी नहीं रहने देते। क्योंकि अभिमान जन्म-मरणरूप संसारका मूल है और अनेक प्रकारके क्लेशों तथा समस्त शोकोंका देनेवाला है॥ ३॥

ताते करहिं कृपानिधि दूरी। सेवक पर ममता अति भूरी॥
जिमि सिसु तन ब्रन होइ गोसाईं। मातु चिराव कठिन की नाईं॥ ४॥

इसीलिये कृपानिधि उसे दूर कर देते हैं; क्योंकि सेवकपर उनकी बहुत ही अधिक ममता है। हे गोसाईं! जैसे बच्चेके शरीरमें फोड़ा हो जाता है तो माता उसे कठोर हृदयकी भाँति चिरा डालती है॥ ४॥

दो०—जदपि प्रथम दुख पावइ रोवइ बाल अधीर।
ब्याधि नास हित जननी गनति न सो सिसु पीर॥७४ (क)॥

यद्यपि बच्चा पहले (फोड़ा चिराते समय) दु:ख पाता है और अधीर होकर रोता है, तो भी रोगके नाशके लिये माता बच्चेकी उस पीड़ाको कुछ भी नहीं गिनती (उसकी परवा नहीं करती और फोड़ेको चिरवा ही डालती है)॥ ७४ (क)॥

तिमि रघुपति निज दास कर हरहिं मान हित लागि।
तुलसिदास ऐसे प्रभुहि कस न भजहु भ्रम त्यागि॥७४ (ख)॥

उसी प्रकार श्रीरघुनाथजी अपने दासका अभिमान उसके हितके लिये हर लेते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि ऐसे प्रभुको भ्रम त्यागकर क्यों नहीं भजते॥ ७४ (ख)॥

चौ०—राम कृपा आपनि जड़ताई। कहउँ खगेस सुनहु मन लाई॥
जब जब राम मनुज तनु धरहीं। भक्त हेतु लीला बहु करहीं॥१॥

हे पक्षिराज गरुड़जी! श्रीरामजीकी कृपा और अपनी जड़ता (मूर्खता) की बात कहता हूँ, मन लगाकर सुनिये। जब-जब श्रीरामचन्द्रजी मनुष्यशरीर धारण करते हैं और भक्तोंके लिये बहुत-सी लीलाएँ करते हैं॥ १॥

तब तब अवधपुरी मैं जाऊँ। बालचरित बिलोकि हरषाऊँ॥
जन्म महोत्सव देखउँ जाई। बरष पाँच तहँ रहउँ लोभाई॥२॥

तब-तब मैं अयोध्यापुरी जाता हूँ और उनकी बाललीला देखकर हर्षित होता हूँ। वहाँ जाकर मैं जन्ममहोत्सव देखता हूँ और [भगवान्‌की शिशुलीलामें] लुभाकर पाँच वर्षतक वहीं रहता हूँ॥ २॥

इष्टदेव मम बालक रामा। सोभा बपुष कोटि सत कामा॥
निज प्रभु बदन निहारि निहारी। लोचन सुफल करउँ उरगारी॥३॥

बालकरूप श्रीरामचन्द्रजी मेरे इष्टदेव हैं, जिनके शरीरमें अरबों कामदेवोंकी शोभा है। हे गरुड़जी! अपने प्रभुका मुख देख-देखकर मैं नेत्रोंको सफल करता हूँ॥ ३॥

लघु बायस बपु धरि हरि संगा। देखउँ बालचरित बहु रंगा॥४॥

छोटे-से कौएका शरीर धरकर और भगवान्‌के साथ-साथ फिरकर मैं उनके भाँति-भाँतिके बालचरित्रोंको देखा करता हूँ॥ ४॥

दो०—लरिकाईं जहँ जहँ फिरहिं तहँ तहँ संग उड़ाउँ।
जूठनि परइ अजिर महँ सो उठाइ करि खाउँ॥७५ (क)॥

लड़कपनमें वे जहाँ-जहाँ फिरते हैं, वहाँ-वहाँ मैं साथ-साथ उड़ता हूँ और आँगनमें उनकी जो जूठन पड़ती है, वही उठाकर खाता हूँ॥ ७५ (क)॥

एक बार अतिसय सब चरित किए रघुबीर।
सुमिरत प्रभु लीला सोइ पुलकित भयउ सरीर॥७५ (ख)॥

एक बार श्रीरघुवीरने सब चरित्र बहुत अधिकतासे किये। प्रभुकी उस लीलाका स्मरण करते ही काकभुशुण्डिजीका शरीर [प्रेमानन्दवश] पुलकित हो गया॥ ७५ (ख)॥

चौ०—कहइ भसुंड सुनहु खगनायक। राम चरित सेवक सुखदायक॥
नृप मंदिर सुंदर सब भाँती। खचित कनक मनि नाना जाती॥ १॥

भुशुण्डिजी कहने लगे—हे पक्षिराज! सुनिये, श्रीरामजीका चरित्र सेवकोंको सुख देनेवाला है। [अयोध्याका] राजमहल सब प्रकारसे सुन्दर है। सोनेके महलमें नाना प्रकारके रत्न जड़े हुए हैं॥ १॥

बरनि न जाइ रुचिर अँगनाई। जहँ खेलहिं नित चारिउ भाई॥
बालबिनोद करत रघुराई। बिचरत अजिर जननि सुखदाई॥ २॥

सुन्दर आँगनका वर्णन नहीं किया जा सकता, जहाँ चारों भाई नित्य खेलते हैं। माताको सुख देनेवाले बालविनोद करते हुए श्रीरघुनाथजी आँगनमें विचर रहे हैं॥ २॥

मरकत मृदुल कलेवर स्यामा। अंग अंग प्रति छबि बहु कामा॥
नव राजीव अरुन मृदु चरना। पदज रुचिर नख ससि दुति हरना॥ ३॥

मरकतमणिके समान हरिताभ श्याम और कोमल शरीर है। अङ्ग-अङ्गमें बहुत-से कामदेवोंकी शोभा छायी हुई है। नवीन [लाल] कमलके समान लाल-लाल कोमल चरण हैं। सुन्दर अँगुलियाँ हैं और नख अपनी ज्योतिसे चन्द्रमाकी कान्तिको हरनेवाले हैं॥ ३॥

ललित अंक कुलिसादिक चारी। नूपुर चारु मधुर रवकारी॥
चारु पुरट मनि रचित बनाई। कटि किंकिनि कल मुखर सुहाई॥ ४॥

[तलवेमें] वज्रादि (वज्र, अंकुश, ध्वजा और कमल) के चार सुन्दर चिह्न हैं। चरणोंमें मधुर शब्द करनेवाले सुन्दर नूपुर हैं। मणियों, रत्नोंसे से जड़ी हुई सोनेकी बनी हुई सुन्दर करधनीका शब्द सुहावना लग रहा है॥ ४॥

दो०—रेखा त्रय सुंदर उदर नाभी रुचिर गँभीर।
उर आयत भ्राजत बिबिधि बाल बिभूषन चीर॥ ७६॥

उदरपर सुन्दर तीन रेखाएँ (त्रिवली) हैं, नाभि सुन्दर और गहरी है। विशाल वक्षःस्थलपर अनेकों प्रकारके बच्चोंके आभूषण और वस्त्र सुशोभित हैं॥ ७६॥

चौ०—अरुन पानि नख करज मनोहर। बाहु बिसाल बिभूषन सुंदर॥
कंध बाल केहरि दर ग्रीवा। चारु चिबुक आनन छबि सींवा॥ १॥

लाल-लाल हथेलियाँ, नख और अँगुलियाँ मनको हरनेवाले हैं और विशाल भुजाओंपर सुन्दर आभूषण हैं। बालसिंह (सिंहके बच्चे) के-से कंधे और शंखके समान (तीन रेखाओंसे युक्त) गला है। सुन्दर ठुड्डी है और मुख तो छबिकी सीमा ही है॥ १॥

कलबल बचन अधर अरुनारे। दुइ दुइ दसन बिसद बर बारे॥
ललित कपोल मनोहर नासा। सकल सुखद ससि कर सम हासा॥ २॥

कलबल (तोतले) वचन हैं, लाल-लाल ओंठ हैं। उज्ज्वल, सुन्दर और छोटी-छोटी [ऊपर और नीचे] दो-दो दँतुलियाँ हैं। सुन्दर गाल, मनोहर नासिका और सब सुखोंको देनेवाली चन्द्रमाकी [अथवा सुख देनेवाली समस्त कलाओंसे पूर्ण चन्द्रमाकी]

किरणोंके समान मधुर मुसकान है॥ २॥

नील कंज लोचन भव मोचन। भ्राजत भाल तिलक गोरोचन॥
बिकट भृकुटि सम श्रवन सुहाए। कुंचित कच मेचक छबि छाए॥ ३॥

नीले कमलके समान नेत्र जन्म-मृत्यु [के बन्धन] से छुड़ानेवाले हैं। ललाटपर गोरोचनका तिलक सुशोभित है। भौंहें टेढ़ी हैं, कान सम और सुन्दर हैं, काले और घुँघराले केशोंकी छबि छा रही है॥ ३॥

पीत झीनि झगुली तन सोही। किलकनि चितवनि भावति मोही॥
रूप रासि नृप अजिर बिहारी। नाचहिं निज प्रतिबिंब निहारी॥ ४॥

पीली और महीन झँगुली शरीरपर शोभा दे रही है। उनकी किलकारी और चितवन मुझे बहुत ही प्रिय लगती है। राजा दशरथजीके आँगनमें विहार करनेवाले, रूपकी राशि श्रीरामचन्द्रजी अपनी परछाहीं देखकर नाचते हैं॥ ४॥

मोहि सन करहिं बिबिधि बिधि क्रीड़ा। बरनत मोहि होति अति ब्रीड़ा॥
किलकत मोहि धरन जब धावहिं। चलउँ भागि तब पूप देखावहिं॥ ५॥

और मुझसे बहुत प्रकारके खेल करते हैं, जिन चरित्रोंका वर्णन करते मुझे लज्जा आती है। किलकारी मारते हुए जब वे मुझे पकड़ने दौड़ते और मैं भाग चलता, तब मुझे पूआ दिखलाते थे॥ ५॥

दो०—आवत निकट हँसहिं प्रभु भाजत रुदन कराहिं।
जाउँ समीप गहन पद फिरि फिरि चितइ पराहिं॥ ७७ (क)॥

मेरे निकट आनेपर प्रभु हँसते हैं और भाग जानेपर रोते हैं और जब मैं उनका चरण स्पर्श करनेके लिये पास जाता हूँ, तब वे पीछे फिर-फिरकर मेरी ओर देखते हुए भाग जाते हैं॥ ७७ (क)॥

प्राकृत सिसु इव लीला देखि भयउ मोहि मोह।
कवन चरित्र करत प्रभु चिदानंद संदोह॥ ७७ (ख)॥

साधारण बच्चों-जैसी लीला देखकर मुझे मोह (शंका) हुआ कि सच्चिदानन्दघन प्रभु यह कौन [महत्त्वका] चरित्र (लीला) कर रहे हैं॥ ७७ (ख)॥

चौ०—एतना मन आनत खगराया। रघुपति प्रेरित ब्यापी माया॥
सो माया न दुखद मोहि काहीं। आन जीव इव संसृत नाहीं॥ १॥

हे पक्षिराज! मनमें इतनी [शंका] लाते ही श्रीरघुनाथजीके द्वारा प्रेरित माया मुझपर छा गयी। परन्तु वह माया न तो मुझे दुःख देनेवाली हुई और न दूसरे जीवोंकी भाँति संसारमें डालनेवाली हुई॥ १॥

नाथ इहाँ कछु कारन आना। सुनहु सो सावधान हरिजाना॥
ग्यान अखंड एक सीताबर। माया बस्य जीव सचराचर॥ २॥

हे नाथ! यहाँ कुछ दूसरा ही कारण है। हे भगवान्‌के वाहन गरुड़जी! उसे सावधान होकर सुनिये। एक सीतापति श्रीरामजी ही अखण्ड ज्ञानस्वरूप हैं और जड-चेतन सभी

जीव मायाके वश हैं॥ २॥

जौं सब कें रह ग्यान एकरस। ईस्वर जीवहि भेद कहहु कस॥
माया बस्य जीव अभिमानी। ईस बस्य माया गुन खानी॥ ३॥

यदि जीवोंको एकरस (अखण्ड) ज्ञान रहे तो कहिये, फिर ईश्वर और जीवमें भेद ही कैसा? अभिमानी जीव मायाके वश है और वह [सत्त्व, रज, तम—इन] तीनों गुणोंकी खान माया ईश्वरके वशमें है॥ ३॥

परबस जीव स्वबस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता॥
मुधा भेद जद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया॥ ४॥

जीव परतन्त्र है, भगवान् स्वतन्त्र हैं; जीव अनेक हैं, श्रीपति भगवान् एक हैं। यद्यपि मायाका किया हुआ यह भेद असत् है, तथापि वह भगवान्‌के भजन बिना करोड़ों उपाय करनेपर भी नहीं जा सकता॥ ४॥

दो०—रामचंद्र के भजन बिनु जो चह पद निर्बान।
ग्यानवंत अपि सो नर पसु बिनु पूँछ बिषान॥ ७८ (क)॥

श्रीरामचन्द्रजीके भजन बिना जो मोक्षपद चाहता है, वह मनुष्य ज्ञानवान् होनेपर भी बिना पूँछ और सींगका पशु है॥ ७८ (क)॥

राकापति षोड़स उअहिं तारागन समुदाइ।
सकल गिरिन्ह दव लाइअ बिनु रबि राति न जाइ॥ ७८ (ख)॥

सभी तारागणोंके साथ सोलह कलाओंसे पूर्ण चन्द्रमा उदय हो और जितने पर्वत हैं उन सबमें दावाग्नि लगा दी जाय तो भी सूर्यके उदय हुए बिना रात्रि नही जा सकती॥ ७८ (ख)॥

चौ०—ऐसेहिं हरि बिनु भजन खगेसा। मिटइ न जीवन्ह केर कलेसा॥
हरि सेवकहि न ब्याप अबिद्या। प्रभु प्रेरित ब्यापइ तेहि बिद्या॥ १॥

हे पक्षिराज! इसी प्रकार श्रीहरिके भजन बिना जीवोंका क्लेश नहीं मिटता श्रीहरिके सेवकको अविद्या नहीं व्यापती। प्रभुकी प्रेरणासे उसे विद्या व्यापती है॥ १

ताते नास न होइ दास कर। भेद भगति बाढ़इ बिहंगबर॥
भ्रम तें चकित राम मोहि देखा। बिहँसे सो सुनु चरित बिसेषा॥ २॥

हे पक्षिश्रेष्ठ! इसीसे दासका नाश नहीं होता और भेद-भक्ति बढ़ती है। श्रीरामजी मुझे जब भ्रमसे चकित देखा, तब वे हँसे। वह विशेष चरित्र सुनिये॥ २॥

तेहि कौतुक कर मरमु न काहूँ। जाना अनुज न मातु पिताहूँ॥
जानु पानि धाए मोहि धरना। स्यामल गात अरुन कर चरना॥ ३॥

उस खेलका मर्म किसीने नहीं जाना, न छोटे भाइयोंने और न माता-पिताने हँ वे श्याम शरीर और लाल-लाल हथेली और चरणतलवाले बालरूप श्रीरामजी घुट और हाथोंके बल मुझे पकड़नेको दौड़े॥ ३॥

तब मैं भागि चलेउँ उरगारी। राम गहन कहँ भुजा पसारी॥
जिमि जिमि दूरि उड़ाउँ अकासा। तहँ भुज हरि देखउँ निज पासा॥ ४॥

हे सर्पोंके शत्रु गरुड़जी! तब मैं भाग चला। श्रीरामजीने मुझे पकड़नेके लिये भुजा फैलायी। मैं जैसे-जैसे आकाशमें दूर उड़ता, वैसे-वैसे ही वहाँ श्रीहरिकी भुजाको अपने पास देखता था॥ ४॥

दो०—ब्रह्मलोक लगि गयउँ मैं चितयउँ पाछ उड़ात।
जुग अंगुल कर बीच सब राम भुजहि मोहि तात॥७९ (क)॥

मैं ब्रह्मलोकतक गया और जब उड़ते हुए मैंने पीछेकी ओर देखा, तो हे तात! श्रीरामजीकी भुजामें और मुझमें केवल दो ही अंगुलका बीच था॥ ७९ (क)॥

सप्तावरन भेद करि जहाँ लगें गति मोरि।
गयउँ तहाँ प्रभु भुज निरखि ब्याकुल भयउँ बहोरि॥७९ (ख)॥

सातों आवरणोंको भेदकर जहाँतक मेरी गति थी, वहाँतक मैं गया। पर वहाँ भी प्रभुकी भुजाको [अपने पीछे] देखकर मैं व्याकुल हो गया॥ ७९ (ख)॥

चौ०—मूदेउँ नयन त्रसित जब भयऊँ। पुनि चितवत कोसलपुर गयऊँ॥
मोहि बिलोकि राम मुसुकाहीं। बिहँसत तुरत गयउँ मुख माहीं॥ १॥

जब मैं भयभीत हो गया, तब मैंने आँखें मूद लीं। फिर आँखें खोलकर देखते ही अवधपुरीमें पहुँच गया। मुझे देखकर श्रीरामजी मुसकराने लगे। उनके हँसते ही मैं तुरंत उनके मुखमें चला गया॥ १॥

उदर माझ सुनु अंडज राया। देखेउँ बहु ब्रह्मांड निकाया॥
अति बिचित्र तहँ लोक अनेका। रचना अधिक एक ते एका॥ २॥

हे पक्षिराज! सुनिये, मैंने उनके पेटमें बहुत-से ब्रह्माण्डोंके समूह देखे। वहाँ (उन ब्रह्माण्डोंमें) अनेकों विचित्र लोक थे, जिनकी रचना एक-से-एककी बढ़कर थी॥ २॥

कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा। अगनित उडगन रबि रजनीसा॥
अगनित लोकपाल जम काला। अगनित भूधर भूमि बिसाला॥ ३॥

करोड़ों ब्रह्माजी और शिवजी, अनगिनत तारागण, सूर्य और चन्द्रमा, अनगिनत लोकपाल, यम और काल, अनगिनत विशाल पर्वत और भूमि,॥ ३॥

सागर सरि सर बिपिन अपारा। नाना भाँति सृष्टि बिस्तारा॥
सुर मुनि सिद्ध नाग नर किंनर। चारि प्रकार जीव सचराचर॥ ४॥

असंख्य समुद्र, नदी, तालाब और वन तथा और भी नाना प्रकारकी सृष्टिका विस्तार देखा। देवता, मुनि, सिद्ध, नाग, मनुष्य, किन्नर तथा चारों प्रकारके जड़ और चेतन जीव देखे॥ ४॥

दो०—जो नहिं देखा नहिं सुना जो मनहूँ न समाइ।
सो सब अद्भुत देखेउँ बरनि कवनि बिधि जाइ॥८० (क)॥

जो कभी न देखा था, न सुना था और जो मनमें भी नहीं समा सकता था (अर्थात् जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी, वही सब अद्भुत सृष्टि मैंने देखी। तब उसका किस प्रकार वर्णन किया जाय!॥ ८० (क)॥

एक एक ब्रह्मांड महुँ रहउँ बरष सत एक।
एहि बिधि देखत फिरउँ मैं अंड कटाह अनेक॥८० (ख)॥

मैं एक-एक ब्रह्माण्डमें एक-एक सौ वर्षतक रहता। इस प्रकार मैं अनेकों ब्रह्माण्ड देखता फिरा॥ ८० (ख)॥

चौ०—लोक लोक प्रति भिन्न बिधाता। भिन्न बिष्नु सिव मनु दिसित्राता॥
नर गंधर्ब भूत बेताला। किंनर निसिचर पसु खग ब्याला॥१॥

प्रत्येक लोकमें भिन्न-भिन्न ब्रह्मा, भिन्न-भिन्न विष्णु, शिव, मनु, दिक्पाल, मनुष्य, गन्धर्व, भूत, वैताल, किन्नर, राक्षस, पशु, पक्षी, सर्प,॥ १॥

देव दनुज गन नाना जाती। सकल जीव तहँ आनहि भाँती॥
महि सरि सागर सर गिरि नाना। सब प्रपंच तहँ आनइ आना॥२॥

तथा नाना जातिके देवता एवं दैत्यगण थे। सभी जीव वहाँ दूसरे ही प्रकारके थे। अनेक पृथ्वी, नदी, समुद्र, तालाब, पर्वत तथा सब सृष्टि वहाँ दूसरी-ही-दूसरी प्रकारकी थी॥ २॥

अंडकोस प्रति प्रति निज रूपा। देखेउँ जिनस अनेक अनूपा॥
अवधपुरी प्रति भुवन निनारी। सरजू भिन्न भिन्न नर नारी॥३॥

प्रत्येक ब्रह्माण्ड-ब्रह्माण्डमें मैंने अपना रूप देखा तथा अनेकों अनुपम वस्तुएँ देखीं। प्रत्येक भुवनमें न्यारी ही अवधपुरी, भिन्न ही सरयूजी और भिन्न प्रकारके ही नर-नारी थे॥ ३॥

दसरथ कौसल्या सुनु ताता। बिबिध रूप भरतादिक भ्राता॥
प्रति ब्रह्मांड राम अवतारा। देखउँ बालबिनोद अपारा॥४॥

हे तात! सुनिये, दशरथजी, कौसल्याजी और भरतजी आदि भाई भी भिन्न-भिन्न रूपोंके थे। मैं प्रत्येक ब्रह्माण्डमें रामावतार और उनकी अपार बाललीलाएँ देखता फिरता॥ ४॥

दो०—भिन्न भिन्न मैं दीख सबु अति बिचित्र हरिजान।
अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु राम न देखेउँ आन॥८१ (क)॥

हे हरिवाहन! मैंने सभी कुछ भिन्न-भिन्न और अत्यन्त विचित्र देखा। मैं अनगिनत ब्रह्माण्डोंमें फिरा, पर प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको मैंने दूसरी तरहका नहीं देखा॥ ८१ (क)॥

सोइ सिसुपन सोइ सोभा सोइ कृपाल रघुबीर।
भुवन भुवन देखत फिरउँ प्रेरित मोह समीर॥८१ (ख)॥

सर्वत्र वही शिशुपन, वही शोभा और वही कृपालु श्रीरघुवीर! इस प्रकार मोहरूपी पवनकी प्रेरणासे मैं भुवन-भुवनमें देखता फिरता था॥ ८१ (ख)॥

चौ०—भ्रमत मोहि ब्रह्मांड अनेका। बीते मनहुँ कल्प सत एका॥
फिरत फिरत निज आश्रम आयउँ। तहँ पुनि रहि कछु काल गवाँयउँ॥१॥

अनेक ब्रह्माण्डोंमें भटकते मुझे मानो एक सौ कल्प बीत गये। फिरता-फिरता मैं अपने आश्रममें आया और कुछ काल वहाँ रहकर बिताया॥ १॥

निज प्रभु जन्म अवध सुनि पायउँ। निर्भर प्रेम हरषि उठि धायउँ॥
देखउँ जन्म महोत्सव जाई। जेहि बिधि प्रथम कहा मैं गाई॥२॥

फिर जब अपने प्रभुका अवधपुरीमें जन्म (अवतार) सुन पाया, तब प्रेमसे परिपूर्ण होकर मैं हर्षपूर्वक उठ दौड़ा। जाकर मैंने जन्म-महोत्सव देखा, जिस प्रकार मैं पहले वर्णन कर चुका हूँ॥ २॥

राम उदर देखेउँ जग नाना। देखत बनइ न जाइ बखाना॥
तहँ पुनि देखेउँ राम सुजाना। माया पति कृपाल भगवाना॥ ३॥

श्रीरामचन्द्रजीके पेटमें मैंने बहुत-से जगत् देखे, जो देखते ही बनते थे, वर्णन नहीं किये जा सकते। वहाँ फिर मैंने सुजान मायाके स्वामी कृपालु भगवान् श्रीरामको देखा॥ ३॥

करउँ बिचार बहोरि बहोरी। मोह कलिल ब्यापित मति मोरी॥
उभय घरी महँ मैं सब देखा। भयउँ भ्रमित मन मोह बिसेषा॥ ४॥

मैं बार-बार विचार करता था। मेरी बुद्धि मोहरूपी कीचड़से व्याप्त थी। यह सब मैंने दो ही घड़ीमें देखा। मनमें विशेष मोह होनेसे मैं थक गया॥ ४॥

दो०—देखि कृपाल बिकल मोहि बिहँसे तब रघुबीर।
बिहँसतहीं मुख बाहेर आयउँ सुनु मतिधीर॥ ८२ (क)॥

मुझे व्याकुल देखकर तब कृपालु श्रीरघुवीर हँस दिये। हे धीरबुद्धि गरुड़जी! सुनिये, उनके हँसते ही मैं मुँहसे बाहर आ गया॥ ८२ (क)॥

सोइ लरिकाई मो सन करन लगे पुनि राम।
कोटि भाँति समुझावउँ मनु न लहइ बिश्राम॥ ८२ (ख)॥

श्रीरामचन्द्रजी मेरे साथ फिर वही लड़कपन करने लगे। मैं करोड़ों (असंख्य) प्रकारसे मनको समझाता था, पर वह शान्ति नहीं पाता था॥ ८२ (ख)॥

चौ०—देखि चरित यह सो प्रभुताई। समुझत देह दसा बिसराई॥
धरनि परेउँ मुख आव न बाता। त्राहि त्राहि आरत जन त्राता॥ १॥

यह [बाल] चरित्र देखकर और [पेटके अन्दर देखी हुई] उस प्रभुताका स्मरणकर मैं शरीरकी सुध भूल गया और 'हे आर्त्तजनोंके रक्षक! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये' पुकारता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा। मुखसे बात नहीं निकलती थी!॥ १॥

प्रेमाकुल प्रभु मोहि बिलोकी। निज माया प्रभुता तब रोकी॥
कर सरोज प्रभु मम सिर धरेऊ। दीनदयाल सकल दुख हरेऊ॥ २॥

तदनन्तर प्रभुने मुझे प्रेमविह्वल देखकर अपनी मायाकी प्रभुता (प्रभाव) को रोक लिया। प्रभुने अपना कर-कमल मेरे सिरपर रखा। दीनदयालुने मेरा सम्पूर्ण दुःख हर लिया॥ २॥

कीन्ह राम मोहि बिगत बिमोहा। सेवक सुखद कृपा संदोहा॥
प्रभुता प्रथम बिचारि बिचारी। मन महँ होइ हरष अति भारी॥ ३॥

सेवकोंको सुख देनेवाले, कृपाके समूह (कृपामय) श्रीरामजीने मुझे मोहसे सर्वथा रहित कर दिया। उनकी पहलेवाली प्रभुताको विचार-विचारकर (याद कर-करके) मेरे मनमें बड़ा भारी हर्ष हुआ॥ ३॥

भगत बछलता प्रभु कै देखी। उपजी मम उर प्रीति बिसेषी॥
सजल नयन पुलकित कर जोरी। कीन्हिउँ बहु बिधि बिनय बहोरी॥ ४॥

प्रभुकी भक्तवत्सलता देखकर मेरे हृदयमें बहुत ही प्रेम उत्पन्न हुआ। फिर मैंने [आनन्दसे] नेत्रोंमें जल भरकर, पुलकित होकर और हाथ जोड़कर बहुत प्रकारसे विनती की॥ ४॥

दो०—सुनि सप्रेम मम बानी देखि दीन निज दास।
बचन सुखद गंभीर मृदु बोले रमानिवास॥ ८३ (क)॥

मेरी प्रेमयुक्त वाणी सुनकर और अपने दासको दीन देखकर रमानिवास श्रीरामजी सुखदायक, गम्भीर और कोमल वचन बोले—॥ ८३ (क)॥

काकभसुंडि मागु बर अति प्रसन्न मोहि जानि।
अनिमादिक सिधि अपर रिधि मोच्छ सकल सुख खानि॥ ८३ (ख)॥

हे काकभुशुण्डि! तू मुझे अत्यन्त प्रसन्न जानकर वर माँग। अणिमा आदि अष्ट सिद्धियाँ, दूसरी ऋद्धियाँ तथा सम्पूर्ण सुखोंकी खान मोक्ष,॥ ८३ (ख)॥

चौ०—ग्यान बिबेक बिरति बिग्याना। मुनि दुर्लभ गुन जे जग नाना॥
आजु देउँ सब संसय नाहीं। मागु जो तोहि भाव मन माहीं॥ १॥

ज्ञान, विवेक, वैराग्य, विज्ञान (तत्त्वज्ञान) और वे अनेकों गुण जो जगत्में मुनियोंके लिये भी दुर्लभ हैं, ये सब मैं आज तुझे दूँगा, इसमें सन्देह नहीं। जो तेरे मन भावे, सो माँग ले॥ १॥

सुनि प्रभु बचन अधिक अनुरागेउँ। मन अनुमान करन तब लागेउँ॥
प्रभु कह देन सकल सुख सही। भगति आपनी देन न कही॥ २॥

प्रभुके वचन सुनकर मैं बहुत ही प्रेममें भर गया। तब मनमें अनुमान करने लगा कि प्रभुने सब सुखोंके देनेकी बात कही, यह तो सत्य है; पर अपनी भक्ति देनेकी बात नहीं कही॥ २॥

भगति हीन गुन सब सुख ऐसे। लवन बिना बहु बिंजन जैसे॥
भजन हीन सुख कवने काजा। अस बिचारि बोलेउँ खगराजा॥ ३॥

भक्तिसे रहित सब गुण और सब सुख वैसे ही (फीके) हैं जैसे नमकके बिना बहुत प्रकारके भोजनके पदार्थ। भजनसे रहित सुख किस कामके? हे पक्षिराज! ऐसा विचारकर मैं बोला—॥ ३॥

जौं प्रभु होइ प्रसन्न बर देहू। मो पर करहु कृपा अरु नेहू॥
मन भावत बर मागउँ स्वामी। तुम्ह उदार उर अंतरजामी॥ ४॥

हे प्रभो! यदि आप प्रसन्न होकर मुझे वर देते हैं और मुझपर कृपा और स्नेह करते हैं तो हे स्वामी! मैं अपना मन-भाया वर माँगता हूँ। आप उदार हैं और हृदयके भीतरकी जाननेवाले हैं॥ ४॥

दो०—अबिरल भगति बिसुद्ध तव श्रुति पुरान जो गाव।
जेहि खोजत जोगीस मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव॥ ८४ (क)॥

आपकी जिस अविरल (प्रगाढ़) एवं विशुद्ध (अनन्य निष्काम) भक्तिको श्रुति और पुराण गाते हैं, जिसे योगीश्वर मुनि खोजते हैं और प्रभुकी कृपासे कोई विरला ही जिसे पाता है॥ ८४ (क)॥

भगत कल्पतरु प्रनत हित कृपा सिंधु सुख धाम।
सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम॥ ८४ (ख)॥

हे भक्तोंके [मन-इच्छित फल देनेवाले] कल्पवृक्ष! हे शरणागतके हितकारी! हे कृपासागर! हे सुखधाम श्रीरामजी! दया करके मुझे अपनी वही भक्ति दीजिये॥ ८४ (ख)॥

चौ०—एवमस्तु कहि रघुकुलनायक। बोले बचन परम सुखदायक॥
सुनु बायस तैं सहज सयाना। काहे न मागसि अस बरदाना॥ १॥

'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहकर रघुवंशके स्वामी परम सुख देनेवाले वचन बोले—हे काक! सुन, तू स्वभावसे ही बुद्धिमान् है। ऐसा वरदान कैसे न माँगता?॥ १॥

सब सुख खानि भगति तैं मागी। नहिं जग कोउ तोहि सम बड़भागी॥
जो मुनि कोटि जतन नहिं लहहीं। जे जप जोग अनल तन दहहीं॥ २॥

तूने सब सुखोंकी खान भक्ति माँग ली, जगत्‌में तेरे समान बड़भागी कोई नहीं है। वे मुनि जो जप और योगकी अग्निसे शरीर जलाते रहते हैं, करोड़ों यत्न करके भी जिसको (जिस भक्तिको) नहीं पाते॥ २॥

रीझेउँ देखि तोरि चतुराई। मागेहु भगति मोहि अति भाई॥
सुनु बिहंग प्रसाद अब मोरें। सब सुभ गुन बसिहहिं उर तोरें॥ ३॥

वही भक्ति तूने माँगी। तेरी चतुरता देखकर मैं रीझ गया। यह चतुरता मुझे बहुत ही अच्छी लगी। हे पक्षी! सुन, मेरी कृपासे अब समस्त शुभ गुण तेरे हृदयमें बसेंगे॥ ३॥

भगति ग्यान बिग्यान बिरागा। जोग चरित्र रहस्य बिभागा॥
जानब तैं सबही कर भेदा। मम प्रसाद नहिं साधन खेदा॥ ४॥

भक्ति, ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य, योग, मेरी लीलाएँ और उनके रहस्य तथा विभाग—इन सबके भेदको तू मेरी कृपासे ही जान जायगा। तुझे साधनका कष्ट नहीं होगा॥ ४॥

दो०—माया संभव भ्रम सब अब न ब्यापिहहिं तोहि।
जानेसु ब्रह्म अनादि अज अगुन गुनाकर मोहि॥ ८५ (क)॥

मायासे उत्पन्न सब भ्रम अब तुझको नहीं व्यापेंगे। मुझे अनादि, अजन्मा, अगुण (प्रकृतिके गुणोंसे रहित) और [गुणातीत दिव्य] गुणोंकी खान ब्रह्म जानना॥ ८५ (क)॥

मोहि भगत प्रिय संतत अस बिचारि सुनु काग।
कायँ बचन मन मम पद करेसु अचल अनुराग॥ ८५ (ख)॥

हे काक! सुन, मुझे भक्त निरन्तर प्रिय हैं, ऐसा विचारकर शरीर, वचन और मनसे मेरे चरणोंमें अटल प्रेम करना॥ ८५ (ख)॥

चौ०—अब सुनु परम बिमल मम बानी। सत्य सुगम निगमादि बखानी॥
निज सिद्धांत सुनावउँ तोही। सुनु मन धरु सब तजि भजु मोही॥ १॥

अब मेरी सत्य, सुगम, वेदादिके द्वारा वर्णित परम निर्मल वाणी सुन। मैं तुझको यह 'निज सिद्धान्त' सुनाता हूँ। सुनकर मनमें धारण कर और सब तजकर मेरा भजन कर॥ १॥

मम माया संभव संसारा। जीव चराचर बिबिधि प्रकारा॥
सब मम प्रिय सब मम उपजाए। सब ते अधिक मनुज मोहि भाए॥ २॥

यह सारा संसार मेरी मायासे उत्पन्न है। [इसमें] अनेकों प्रकारके चराचर जीव हैं। वे सभी मुझे प्रिय हैं; क्योंकि सभी मेरे उत्पन्न किये हुए हैं। [किन्तु] मनुष्य मुझको सबसे अधिक अच्छे लगते हैं॥ २॥

तिन्ह महँ द्विज द्विज महँ श्रुतिधारी। तिन्ह महुँ निगम धरम अनुसारी॥
तिन्ह महँ प्रिय बिरक्त पुनि ग्यानी। ग्यानिहु ते अति प्रिय बिग्यानी॥ ३॥

उन मनुष्योंमें भी द्विज, द्विजोंमें भी वेदोंको [कण्ठमें] धारण करनेवाले, उनमें भी वेदोक्त धर्मपर चलनेवाले, उनमें भी विरक्त (वैराग्यवान्) मुझे प्रिय हैं। वैराग्यवानोंमें फिर ज्ञानी और ज्ञानियोंसे भी अत्यन्त प्रिय विज्ञानी हैं॥ ३॥

तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा॥
पुनि पुनि सत्य कहउँ तोहि पाहीं। मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं॥ ४॥

विज्ञानियोंसे भी प्रिय मुझे अपना दास है, जिसे मेरी ही गति (आश्रय) है, कोई दूसरी आशा नहीं है। मैं तुझसे बार-बार सत्य ('निज सिद्धान्त') कहता हूँ कि मुझे अपने सेवकके समान प्रिय कोई भी नहीं है॥ ४॥

भगति हीन बिरंचि किन होई। सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई॥
भगतिवंत अति नीचउ प्रानी। मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी॥ ५॥

भक्तिहीन ब्रह्मा ही क्यों न हो, वह मुझे सब जीवोंके समान ही प्रिय है। परन्तु भक्तिमान् अत्यन्त नीच भी प्राणी मुझे प्राणोंके समान प्रिय है, यह मेरी घोषणा है॥ ५॥

दो०—सुचि सुसील सेवक सुमति प्रिय कहु काहि न लाग।
श्रुति पुरान कह नीति असि सावधान सुनु काग॥ ८६॥

पवित्र, सुशील और सुन्दर बुद्धिवाला सेवक, बता, किसको प्यारा नहीं लगता? वेद और पुराण ऐसी ही नीति कहते हैं। हे काक! सावधान होकर सुन॥ ८६॥

चौ०—एक पिता के बिपुल कुमारा। होहिं पृथक गुन सील अचारा॥
कोउ पंडित कोउ तापस ग्याता। कोउ धनवंत सूर कोउ दाता॥ १॥

एक पिताके बहुत-से पुत्र पृथक्-पृथक् गुण, स्वभाव और आचरणवाले होते हैं। कोई पण्डित होता है, कोई तपस्वी, कोई ज्ञानी, कोई धनी, कोई शूरवीर, कोई दानी,॥ १॥

कोउ सर्बग्य धर्मरत कोई। सब पर पितहि प्रीति सम होई॥
कोउ पितु भगत बचन मन कर्मा। सपनेहुँ जान न दूसर धर्मा॥ २॥

कोई सर्वज्ञ और कोई धर्मपरायण होता है। पिताका प्रेम इन सभीपर समान होता है। परन्तु इनमेंसे यदि कोई मन, वचन और कर्मसे पिताका ही भक्त होता है, स्वप्नमें

भी दूसरा धर्म नहीं जानता,॥ २॥

सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना। जद्यपि सो सब भाँति अयाना॥
एहि बिधि जीव चराचर जेते। त्रिजग देव नर असुर समेते॥ ३॥

वह पुत्र पिताको प्राणोंके समान प्रिय होता है, यद्यपि (चाहे) वह सब प्रकारसे अज्ञान (मूर्ख) ही हो। इस प्रकार तिर्यक् (पशु-पक्षी), देव, मनुष्य और असुरोंसमेत जितने भी चेतन और जड जीव हैं,॥ ३॥

अखिल बिस्व यह मोर उपाया। सब पर मोहि बराबरि दाया॥
तिन्ह महँ जो परिहरि मद माया। भजै मोहि मन बच अरु काया॥ ४॥

[उनसे भरा हुआ] यह सम्पूर्ण विश्व मेरा ही पैदा किया हुआ है। अतः सबपर मेरी बराबर दया है। परन्तु इनमेंसे जो मद और माया छोड़कर मन, वचन और शरीरसे मुझको भजता है,॥ ४॥

दो०—पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ।
सर्ब भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ॥ ८७ (क)॥

वह पुरुष हो, नपुंसक हो, स्त्री हो अथवा चर-अचर कोई भी जीव हो, कपट छोड़कर जो भी सर्वभावसे मुझे भजता है वही मुझे परम प्रिय है॥ ८७ (क)॥

सो०—सत्य कहउँ खग तोहि सुचि सेवक मम प्रानप्रिय।
अस बिचारि भजु मोहि परिहरि आस भरोस सब॥ ८७ (ख)॥

हे पक्षी! मैं तुझसे सत्य कहता हूँ, पवित्र (अनन्य एवं निष्काम) सेवक मुझे प्राणोंके समान प्यारा है। ऐसा विचारकर सब आशा-भरोसा छोड़कर मुझीको भज॥ ८७ (ख)॥

चौ०—कबहूँ काल न ब्यापिहि तोही। सुमिरेसु भजेसु निरंतर मोही॥
प्रभु बचनामृत सुनि न अघाऊँ। तनु पुलकित मन अति हरषाऊँ॥ १॥

तुझे काल कभी नहीं व्यापेगा। निरन्तर मेरा स्मरण और भजन करते रहना। प्रभुके वचनामृत सुनकर मैं तृप्त नहीं होता था। मेरा शरीर पुलकित था और मनमें मैं अत्यन्त ही हर्षित हो रहा था॥ १॥

सो सुख जानइ मन अरु काना। नहिं रसना पहिं जाइ बखाना॥
प्रभु सोभा सुख जानहिं नयना। कहि किमि सकहिं तिन्हहि नहिं बयना॥ २॥

वह सुख मन और कान ही जानते हैं। जीभसे उसका बखान नहीं किया जा सकता। प्रभुकी शोभाका वह सुख नेत्र ही जानते हैं। पर वे कह कैसे सकते हैं? उनके वाणी तो है नहीं॥ २॥

बहु बिधि मोहि प्रबोधि सुख देई। लगे करन सिसु कौतुक तेई॥
सजल नयन कछु मुख करि रूखा। चितइ मातु लागी अति भूखा॥ ३॥

मुझे बहुत प्रकारसे भलीभाँति समझाकर और सुख देकर प्रभु फिर वही बालकोंके खेल करने लगे। नेत्रोंमें जल भरकर और मुखको कुछ रूखा [-सा] बनाकर उन्होंने माताकी ओर देखा—[और मुखाकृति तथा चितवनसे माताको समझा दिया कि] बहुत

भूख लगी है॥ ३॥

देखि मातु आतुर उठि धाई। कहि मृदु बचन लिए उर लाई॥
गोद राखि कराव पय पाना। रघुपति चरित ललित कर गाना॥ ४॥

यह देखकर माता तुरंत उठ दौड़ीं और कोमल वचन कहकर उन्होंने श्रीरामजीको छातीसे लगा लिया। वे गोदमें लेकर उन्हें दूध पिलाने लगीं और श्रीरघुनाथजी (उन्हीं) की ललित लीलाएँ गाने लगीं॥ ४॥

सो०—जेहि सुख लागि पुरारि असुभ बेष कृत सिव सुखद।
अवधपुरी नर नारि तेहि सुख महुँ संतत मगन॥ ८८ (क)॥

जिस सुखके लिये [सबको] सुख देनेवाले कल्याणरूप त्रिपुरारि शिवजीने अशुभ वेष धारण किया, उस सुखमें अवधपुरीके नर-नारी निरन्तर निमग्न रहते हैं॥ ८८ (क)॥

सोई सुख लवलेस जिन्ह बारक सपनेहुँ लहेउ।
ते नहिं गनहिं खगेस ब्रह्मसुखहि सज्जन सुमति॥ ८८ (ख)॥

उस सुखका लवलेशमात्र जिन्होंने एक बार स्वप्नमें भी प्राप्त कर लिया, हे पक्षिराज! वे सुन्दर बुद्धिवाले सज्जन पुरुष उसके सामने ब्रह्मसुखको भी कुछ नहीं गिनते॥ ८८ (ख)॥

चौ०—मैं पुनि अवध रहेउँ कछु काला। देखेउँ बालबिनोद रसाला॥
राम प्रसाद भगति बर पायउँ। प्रभु पद बंदि निजाश्रम आयउँ॥ १॥

मैं और कुछ समयतक अवधपुरीमें रहा और मैंने श्रीरामजीकी रसीली बाललीलाएँ देखीं। श्रीरामजीकी कृपासे मैंने भक्तिका वरदान पाया। तदनन्तर प्रभुके चरणोंकी वन्दना करके मैं अपने आश्रमपर लौट आया॥ १॥

तब ते मोहि न ब्यापी माया। जब ते रघुनायक अपनाया॥
यह सब गुप्त चरित मैं गावा। हरि मायाँ जिमि मोहि नचावा॥ २॥

इस प्रकार जबसे श्रीरघुनाथजीने मुझको अपनाया, तबसे मुझे माया कभी नहीं व्यापी। श्रीहरिकी मायाने मुझे जैसे नचाया, वह सब गुप्त चरित्र मैंने कहा॥ २॥

निज अनुभव अब कहउँ खगेसा। बिनु हरि भजन न जाहिं कलेसा॥
राम कृपा बिनु सुनु खगराई। जानि न जाइ राम प्रभुताई॥ ३॥

हे पक्षिराज गरुड़! अब मैं आपसे अपना निजी अनुभव कहता हूँ [वह यह है कि] भगवान्‌के भजन बिना क्लेश दूर नहीं होते। हे पक्षिराज! सुनिये, श्रीरामजीकी कृपा बिना श्रीरामजीकी प्रभुता नहीं जानी जाती;॥ ३॥

जानें बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती॥
प्रीति बिना नहिं भगति दिढ़ाई। जिमि खगपति जल कै चिकनाई॥ ४॥

प्रभुता जाने बिना उनपर विश्वास नहीं जमता, विश्वासके बिना प्रीति नहीं होती और प्रीति बिना भक्ति वैसे ही दृढ़ नहीं होती जैसे हे पक्षिराज! जलकी चिकनाई ठहरती नहीं॥ ४॥

सो०—बिनु गुर होइ कि ग्यान ग्यान कि होइ बिराग बिनु।
गावहिं बेद पुरान सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु॥ ८९ (क)॥

गुरुके बिना कहीं ज्ञान हो सकता है? अथवा वैराग्यके बिना कहीं ज्ञान हो सकता है? इसी तरह वेद और पुराण कहते हैं कि श्रीहरिकी भक्तिके बिना क्या सुख मिल सकता है?॥ ८९ (क)॥

कोउ बिश्राम कि पाव तात सहज संतोष बिनु।
चलै कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि पचि मरिअ॥ ८९ (ख)॥

हे तात! स्वाभाविक सन्तोषके बिना क्या कोई शान्ति पा सकता है? [चाहे] करोड़ों उपाय करके पच-पच मरिये, [फिर भी] क्या कभी जलके बिना नाव चल सकती है?॥ ८९ (ख)॥

चौ०—बिनु संतोष न काम नसाहीं। काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं॥
राम भजन बिनु मिटहिं कि कामा। थल बिहीन तरु कबहुँ कि जामा॥ १॥

सन्तोषके बिना कामनाका नाश नहीं होता और कामनाओंके रहते स्वप्नमें भी सुख नहीं हो सकता। और श्रीरामके भजन बिना कामनाएँ कहीं मिट सकती हैं? बिना धरतीके भी कहीं पेड़ उग सकता है?॥ १॥

बिनु बिग्यान कि समता आवइ। कोउ अवकास कि नभ बिनु पावइ॥
श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई। बिनु महि गंध कि पावइ कोई॥ २॥

विज्ञान (तत्त्वज्ञान) के बिना क्या समभाव आ सकता है? आकाशके बिना क्या कोई अवकाश (पोल) पा सकता है? श्रद्धाके बिना धर्म [का आचरण] नहीं होता। क्या पृथ्वीतत्त्वके बिना कोई गन्ध पा सकता है?॥ २॥

बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा। जल बिनु रस कि होइ संसारा॥
सील कि मिल बिनु बुध सेवकाई। जिमि बिनु तेज न रूप गोसाँई॥ ३॥

तपके बिना क्या तेज फैल सकता है? जल-तत्त्वके बिना संसारमें क्या रस हो सकता है? पण्डितजनोंकी सेवा बिना क्या शील (सदाचार) प्राप्त हो सकता है? हे गोसाईं! जैसे बिना तेज (अग्नि-तत्त्व) के रूप नहीं मिलता॥ ३॥

निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा। परस कि होइ बिहीन समीरा॥
कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा। बिनु हरि भजन न भव भय नासा॥ ४॥

निज-सुख (आत्मानन्द) के बिना क्या मन स्थिर हो सकता है? वायु-तत्त्वके बिना क्या स्पर्श हो सकता है? क्या विश्वासके बिना कोई भी सिद्धि हो सकती है? इसी प्रकार श्रीहरिके भजन बिना जन्म-मृत्युके भयका नाश नहीं होता॥ ४॥

दो०—बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिश्रामु॥ ९० (क)॥

बिना विश्वासके भक्ति नहीं होती, भक्तिके बिना श्रीरामजी पिघलते (ढरते) नहीं और श्रीरामजीकी कृपाके बिना जीव स्वप्नमें भी शान्ति नहीं पाता॥ ९० (क)॥

सो०—अस बिचारि मतिधीर तजि कुतर्क संसय सकल।
भजहु राम रघुबीर करुनाकर सुंदर सुखद॥ ९० (ख)॥

हे धीरबुद्धि! ऐसा विचारकर सम्पूर्ण कुतर्कों और सन्देहोंको छोड़कर करुणाकी खान, सुन्दर और सुख देनेवाले श्रीरघुवीरका भजन कीजिये॥ ९० (ख)॥

चौ०—निज मति सरिस नाथ मैं गाई। प्रभु प्रताप महिमा खगराई॥
कहेउँ न कछु करि जुगुति बिसेषी। यह सब मैं निज नयनन्हि देखी॥ १॥

हे पक्षिराज! हे नाथ! मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार प्रभुके प्रताप और महिमाका गान किया। मैंने इसमें कोई बात युक्तिसे बढ़ाकर नहीं कही है। यह सब अपनी आँखों देखी कही है॥ १॥

महिमा नाम रूप गुन गाथा। सकल अमित अनंत रघुनाथा॥
निज निज मति मुनि हरि गुन गावहिं। निगम सेष सिव पार न पावहिं॥ २॥

श्रीरघुनाथजीकी महिमा, नाम, रूप और गुणोंकी कथा सभी अपार एवं अनन्त हैं; तथा श्रीरघुनाथजी स्वयं भी अनन्त हैं। मुनिगण अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार श्रीहरिके गुण गाते हैं। वेद, शेष और शिवजी भी उनका पार नहीं पाते॥ २॥

तुम्हहि आदि खग मसक प्रजंता। नभ उड़ाहिं नहिं पावहिं अंता॥
तिमि रघुपति महिमा अवगाहा। तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा॥ ३॥

आपसे लेकर मच्छरपर्यन्त सभी छोटे-बड़े जीव आकाशमें उड़ते हैं, किन्तु आकाशका अन्त कोई नहीं पाते। इसी प्रकार हे तात! श्रीरघुनाथजीकी महिमा भी अथाह है। क्या कभी कोई उसकी थाह पा सकता है? ॥ ३॥

रामु काम सत कोटि सुभग तन। दुर्गा कोटि अमित अरि मर्दन॥
सक्र कोटि सत सरिस बिलासा। नभ सत कोटि अमित अवकासा॥ ४॥

श्रीरामजीका अरबों कामदेवोंके समान सुन्दर शरीर है। वे अनन्त कोटि दुर्गाओंके समान शत्रुनाशक हैं। अरबों इन्द्रोंके समान उनका विलास (ऐश्वर्य) है। अरबों आकाशोंके समान उनमें अनन्त अवकाश (स्थान) है॥ ४॥

दो०—मरुत कोटि सत बिपुल बल रबि सत कोटि प्रकास।
ससि सत कोटि सुसीतल समन सकल भव त्रास॥ ९१ (क)॥

अरबों पवनके समान उनमें महान् बल है और अरबों सूर्योंके समान प्रकाश है। अरबों चन्द्रमाओंके समान वे शीतल और संसारके समस्त भयोंका नाश करनेवाले हैं॥ ९१ (क)॥

काल कोटि सत सरिस अति दुस्तर दुर्ग दुरंत।
धूमकेतु सत कोटि सम दुराधरष भगवंत॥ ९१ (ख)॥

अरबों कालोंके समान वे अत्यन्त दुस्तर, दुर्गम और दुरन्त हैं। वे भगवान् अरबों धूमकेतुओं (पुच्छल तारों) के समान अत्यन्त प्रबल हैं॥ ९१ (ख)॥

चौ०—प्रभु अगाध सत कोटि पताला। समन कोटि सत सरिस कराला॥
तीरथ अमित कोटि सम पावन। नाम अखिल अघ पूग नसावन॥ १॥

अरबों पातालोंके समान प्रभु अथाह हैं। अरबों यमराजोंके समान भयानक हैं।

अनन्तकोटि तीर्थोंके समान वे पवित्र करनेवाले हैं। उनका नाम सम्पूर्ण पापसमूहका नाश करनेवाला है॥ १॥

हिमगिरि कोटि अचल रघुबीरा। सिंधु कोटि सत सम गंभीरा॥
कामधेनु सत कोटि समाना। सकल काम दायक भगवाना॥ २॥

श्रीरघुवीर करोड़ों हिमालयोंके समान अचल (स्थिर) हैं और अरबों समुद्रोंके समान गहरे हैं। भगवान् अरबों कामधेनुओंके समान सब कामनाओं (इच्छित पदार्थों) के देनेवाले हैं॥ २॥

सारद कोटि अमित चतुराई। बिधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई॥
बिष्नु कोटि सम पालन कर्ता। रुद्र कोटि सत सम संहर्ता॥ ३॥

उनमें अनन्तकोटि सरस्वतियोंके समान चतुरता है। अरबों ब्रह्माओंके समान सृष्टिरचनाकी निपुणता है। वे करोड़ों विष्णुओंके समान पालन करनेवाले और अरबों रुद्रोंके समान संहार करनेवाले हैं॥ ३॥

धनद कोटि सत सम धनवाना। माया कोटि प्रपंच निधाना॥
भार धरन सत कोटि अहीसा। निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा॥ ४॥

वे अरबों कुबेरोंके समान धनवान् और करोड़ों मायाओंके समान सृष्टिके खजाने हैं। बोझ उठानेमें वे अरबों शेषोंके समान हैं। [अधिक क्या] जगदीश्वर प्रभु श्रीरामजी [सभी बातोंमें] सीमारहित और उपमारहित हैं॥ ४॥

छं०—निरुपम न उपमा आन राम समान रामु निगम कहै।
जिमि कोटि सत खद्योत सम रबि कहत अति लघुता लहै॥
एहि भाँति निज निज मति बिलास मुनीस हरिहि बखानहीं।
प्रभु भाव गाहक अति कृपाल सप्रेम सुनि सुख मानहीं॥

श्रीरामजी उपमारहित हैं, उनकी कोई दूसरी उपमा है ही नहीं। श्रीरामके समान श्रीराम ही हैं, ऐसा वेद कहते हैं। जैसे अरबों जुगनुओंके समान कहनेसे सूर्य [प्रशंसाको नहीं वरं] अत्यन्त लघुताको ही प्राप्त होता है (सूर्यकी निन्दा ही होती है)। इसी प्रकार अपनी-अपनी बुद्धिके विकासके अनुसार मुनीश्वर श्रीहरिका वर्णन करते हैं। किन्तु प्रभु भक्तोंके भावमात्रको ग्रहण करनेवाले और अत्यन्त कृपालु हैं। वे उस वर्णनको प्रेमसहित सुनकर सुख मानते हैं।

दो०—रामु अमित गुन सागर थाह कि पावइ कोइ।
संतन्ह सन जस किछु सुनेउँ तुम्हहि सुनायउँ सोइ॥ ९२ (क)॥

श्रीरामजी अपार गुणोंके समुद्र हैं, क्या उनकी कोई थाह पा सकता है? संतोंसे मैंने जैसा कुछ सुना था, वही आपको सुनाया॥ ९२ (क)॥

सो०—भाव बस्य भगवान सुख निधान करुना भवन।
तजि ममता मद मान भजिअ सदा सीता रवन॥ ९२ (ख)॥

सुखके भण्डार, करुणाधाम भगवान् भाव (प्रेम) के वश हैं। [अतएव] ममता,

मद और मानको छोड़कर सदा श्रीजानकीनाथजीका ही भजन करना चाहिये॥ ९२ (ख)॥

चौ०—सुनि भुसुंडि के बचन सुहाए। हरषित खगपति पंख फुलाए॥
नयन नीर मन अति हरषाना। श्रीरघुपति प्रताप उर आना॥ १॥

भुशुण्डिजीके सुन्दर वचन सुनकर पक्षिराजने हर्षित होकर अपने पंख फुला लिये। उनके नेत्रोंमें [प्रेमानन्दके आँसुओंका] जल आ गया और मन अत्यन्त हर्षित हो गया। उन्होंने श्रीरघुनाथजीका प्रताप हृदयमें धारण किया॥ १॥

पाछिल मोह समुझि पछिताना। ब्रह्म अनादि मनुज करि माना॥
पुनि पुनि काग चरन सिरु नावा। जानि राम सम प्रेम बढ़ावा॥ २॥

वे अपने पिछले मोहको समझकर (याद करके) पछताने लगे कि मैंने अनादि ब्रह्मको मनुष्य करके माना। गरुड़जीने बार-बार काकभुशुण्डिजीके चरणोंपर सिर नवाया और उन्हें श्रीरामजीके ही समान जानकर प्रेम बढ़ाया॥ २॥

गुर बिनु भव निधि तरइ न कोई। जौं बिरंचि संकर सम होई॥
संसय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता। दुखद लहरि कुतर्क बहु ब्राता॥ ३॥

गुरुके बिना कोई भवसागर नहीं तर सकता, चाहे वह ब्रह्माजी और शङ्करजीके समान ही क्यों न हो। [गरुड़जीने कहा—] हे तात! मुझे सन्देहरूपी सर्पने डस लिया था और [साँपके डसनेपर जैसे विष चढ़नेसे लहरें आती हैं, वैसे ही] बहुत-सी कुतर्करूपी दुःख देनेवाली लहरें आ रही थीं॥ ३॥

तव सरूप गारुड़ि रघुनायक। मोहि जिआयउ जन सुखदायक॥
तव प्रसाद मम मोह नसाना। राम रहस्य अनूपम जाना॥ ४॥

आपके स्वरूपरूपी गारुड़ी (साँपका विष उतारनेवाले) के द्वारा भक्तोंको सुख देनेवाले श्रीरघुनाथजीने मुझे जिला लिया। आपकी कृपासे मेरा मोह नाश हो गया और मैंने श्रीरामजीका अनुपम रहस्य जाना॥ ४॥

दो०—ताहि प्रसंसि बिबिधि बिधि सीस नाइ कर जोरि।
बचन बिनीत सप्रेम मृदु बोलेउ गरुड़ बहोरि॥ ९३ (क)॥

उनकी (भुशुण्डिजीकी) बहुत प्रकारसे प्रशंसा करके, सिर नवाकर और हाथ जोड़कर फिर गरुड़जी प्रेमपूर्वक विनम्र और कोमल वचन बोले—॥ ९३ (क)॥

प्रभु अपने अबिबेक ते बूझउँ स्वामी तोहि।
कृपासिंधु सादर कहहु जानि दास निज मोहि॥ ९३ (ख)॥

हे प्रभो! हे स्वामी! मैं अपने अविवेकके कारण आपसे पूछता हूँ। हे कृपाके समुद्र! मुझे अपना 'निजदास' जानकर आदरपूर्वक (विचारपूर्वक) मेरे प्रश्नका उत्तर कहिये॥ ९३ (ख)॥

चौ०—तुम्ह सर्बग्य तग्य तम पारा। सुमति सुसील सरल आचारा॥
ग्यान बिरति बिग्यान निवासा। रघुनायक के तुम्ह प्रिय दासा॥ १॥

आप सब कुछ जाननेवाले हैं, तत्त्वके ज्ञाता हैं, अन्धकार (माया) से परे, उत्तम बुद्धिसे युक्त, सुशील, सरल आचरणवाले, ज्ञान, वैराग्य और विज्ञानके धाम और

श्रीरघुनाथजीके प्रिय दास हैं॥ १॥

कारन कवन देह यह पाई। तात सकल मोहि कहहु बुझाई॥
राम चरित सर सुंदर स्वामी। पायहु कहाँ कहहु नभगामी॥ २॥

आपने यह काकशरीर किस कारणसे पाया? हे तात! सब समझाकर मुझसे कहिये। हे स्वामी! हे आकाशगामी! यह सुन्दर रामचरितमानस आपने कहाँ पाया, सो कहिये॥ २॥

नाथ सुना मैं अस सिव पाहीं। महा प्रलयहुँ नास तव नाहीं॥
मुधा बचन नहिं ईस्वर कहई। सोउ मोरें मन संसय अहई॥ ३॥

हे नाथ! मैंने शिवजीसे ऐसा सुना है कि महाप्रलयमें भी आपका नाश नहीं होता और ईश्वर (शिवजी) कभी मिथ्या वचन कहते नहीं। वह भी मेरे मनमें सन्देह है॥ ३॥

अग जग जीव नाग नर देवा। नाथ सकल जगु काल कलेवा॥
अंड कटाह अमित लय कारी। कालु सदा दुरतिक्रम भारी॥ ४॥

[क्योंकि] हे नाथ! नाग, मनुष्य, देवता आदि चर-अचर जीव तथा यह सारा जगत् कालका कलेवा है। असंख्य ब्रह्माण्डोंका नाश करनेवाला काल सदा बड़ा ही अनिवार्य है॥ ४॥

सो०—तुम्हहि न ब्यापत काल अति कराल कारन कवन।
मोहि सो कहहु कृपाल ग्यान प्रभाव कि जोग बल॥ ९४ (क)॥

[ऐसा वह] अत्यन्त भयङ्कर काल आपको नहीं व्यापता (आपपर प्रभाव नहीं दिखलाता) इसका क्या कारण है? हे कृपालु! मुझे कहिये, यह ज्ञानका प्रभाव है या योगका बल है?॥ ९४ (क)॥

दो०—प्रभु तव आश्रम आएँ मोर मोह भ्रम भाग।
कारन कवन सो नाथ सब कहहु सहित अनुराग॥ ९४ (ख)॥

हे प्रभो! आपके आश्रममें आते ही मेरा मोह और भ्रम भाग गया। इसका क्या कारण है? हे नाथ! यह सब प्रेमसहित कहिये॥ ९४ (ख)॥

चौ०—गरुड़ गिरा सुनि हरषेउ कागा। बोलेउ उमा परम अनुरागा॥
धन्य धन्य तव मति उरगारी। प्रस्न तुम्हारि मोहि अति प्यारी॥ १॥

हे उमा! गरुड़जीकी वाणी सुनकर काकभुशुण्डिजी हर्षित हुए और परम प्रेमसे बोले—हे सर्पोंके शत्रु! आपकी बुद्धि धन्य है! धन्य है! आपके प्रश्न मुझे बहुत ही प्यारे लगे॥ १॥

सुनि तव प्रस्न सप्रेम सुहाई। बहुत जनम कै सुधि मोहि आई॥
सब निज कथा कहउँ मैं गाई। तात सुनहु सादर मन लाई॥ २॥

आपके प्रेमयुक्त सुन्दर प्रश्न सुनकर मुझे अपने बहुत जन्मोंकी याद आ गयी। मैं अपनी सब कथा विस्तारसे कहता हूँ। हे तात! आदरसहित मन लगाकर सुनिये॥ २॥

जप तप मख सम दम ब्रत दाना। बिरति बिबेक जोग बिग्याना॥
सब कर फल रघुपति पद प्रेमा। तेहि बिनु कोउ न पावइ छेमा॥ ३॥

अनेक जप, तप, यज्ञ, शम (मनको रोकना), दम (इन्द्रियोंको रोकना), व्रत, दान, वैराग्य, विवेक, योग, विज्ञान आदि सबका फल श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें प्रेम होना है। इसके बिना कोई कल्याण नहीं पा सकता॥ ३॥

एहिं तन राम भगति मैं पाई। ताते मोहि ममता अधिकाई॥
जेहि तें कछु निज स्वारथ होई। तेहि पर ममता कर सब कोई॥ ४॥

मैंने इसी शरीरसे श्रीरामजीकी भक्ति प्राप्त की है। इसीसे इसपर मेरी ममता अधिक है। जिससे अपना कुछ स्वार्थ होता है, उसपर सभी कोई प्रेम करते हैं॥ ४॥

सो०—पन्नगारि असि नीति श्रुति संमत सज्जन कहहिं।
अति नीचहु सन प्रीति करिअ जानि निज परम हित॥ ९५ (क)॥

हे गरुड़जी! वेदोंमें मानी हुई ऐसी नीति है और सज्जन भी कहते हैं कि अपना परम हित जानकर अत्यन्त नीचसे भी प्रेम करना चाहिये॥ ९५ (क)।।

पाट कीट तें होइ तेहि तें पाटंबर रुचिर।
कृमि पालइ सबु कोइ परम अपावन प्रान सम॥ ९५ (ख)॥

रेशम कीड़ेसे होता है, उससे सुन्दर रेशमी वस्त्र बनते हैं। इसीसे उस परम अपवित्र कीड़ेको भी सब कोई प्राणोंके समान पालते हैं॥ ९५ (ख)॥

चौ०—स्वारथ साँच जीव कहुँ एहा। मन क्रम बचन राम पद नेहा॥
सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा। जो तनु पाइ भजिअ रघुबीरा॥ १॥

जीवके लिये सच्चा स्वार्थ यही है कि मन, वचन और कर्मसे श्रीरामजीके चरणोंमें प्रेम हो। वही शरीर पवित्र और सुन्दर है जिस शरीरको पाकर श्रीरघुवीरका भजन किया जाय॥ १॥

राम बिमुख लहि बिधि सम देही। कबि कोबिद न प्रसंसहिं तेही॥
राम भगति एहिं तन उर जामी। ताते मोहि परम प्रिय स्वामी॥ २॥

जो श्रीरामजीके विमुख है वह यदि ब्रह्माजीके समान शरीर पा जाय तो भी कवि और पण्डित उसकी प्रशंसा नहीं करते। इसी शरीरसे मेरे हृदयमें रामभक्ति उत्पन्न हुई। इसीसे हे स्वामी! यह मुझे परम प्रिय है॥ २॥

तजउँ न तन निज इच्छा मरना। तन बिनु बेद भजन नहिं बरना॥
प्रथम मोहँ मोहि बहुत बिगोवा। राम बिमुख सुख कबहुँ न सोवा॥ ३॥

मेरा मरण अपनी इच्छापर है, परन्तु फिर भी मैं यह शरीर नहीं छोड़ता। क्योंकि वेदोंने वर्णन किया है कि शरीरके बिना भजन नहीं होता। पहले मोहने मेरी बड़ी दुर्दशा की। श्रीरामजीके विमुख होकर मैं कभी सुखसे नहीं सोया॥ ३॥

नाना जनम कर्म पुनि नाना। किए जोग जप तप मख दाना॥
कवन जोनि जनमेउँ जहँ नाहीं। मैं खगेस भ्रमि भ्रमि जग माहीं॥ ४॥

अनेकों जन्मोंमें मैंने अनेकों प्रकारके योग, जप, तप, यज्ञ और दान आदि कर्म किये। हे गरुड़जी! जगत्‌में ऐसी कौन योनि है, जिसमें मैंने [बार-बार] घूम-फिरकर जन्म न लिया हो॥ ४॥

देखेउँ करि सब करम गोसाईं। सुखी न भयउँ अबहिं की नाईं॥
सुधि मोहि नाथ जन्म बहु केरी। सिव प्रसाद मति मोहँ न घेरी॥५॥

हे गुसाईं! मैंने सब कर्म करके देख लिये, पर अब (इस जन्म) की तरह मैं कभी सुखी नहीं हुआ। हे नाथ! मुझे बहुत-से जन्मोंकी याद है। [क्योंकि] श्रीशिवजीकी कृपासे मेरी बुद्धिको मोहने नहीं घेरा॥ ५॥

दो०—प्रथम जन्म के चरित अब कहउँ सुनहु बिहगेस।
सुनि प्रभु पद रति उपजइ जातें मिटहिं कलेस॥ ९६ (क)॥

हे पक्षिराज! सुनिये, अब मैं अपने प्रथम जन्मके चरित्र कहता हूँ, जिन्हें सुनकर प्रभुके चरणोंमें प्रीति उत्पन्न होती है, जिससे सब क्लेश मिट जाते हैं॥ ९६ (क)॥

पूरुब कल्प एक प्रभु जुग कलिजुग मल मूल।
नर अरु नारि अधर्म रत सकल निगम प्रतिकूल॥ ९६ (ख)॥

हे प्रभो! पूर्वके एक कल्पमें पापोंका मूल युग कलियुग था, जिसमें पुरुष और स्त्री सभी अधर्मपरायण और वेदके विरोधी थे॥ ९६ (ख)॥

चौ०—तेहिं कलिजुग कोसलपुर जाई। जन्मत भयउँ सूद्र तनु पाई॥
सिव सेवक मन क्रम अरु बानी। आन देव निंदक अभिमानी॥ १॥

उस कलियुगमें मैं अयोध्यापुरीमें जाकर शूद्रका शरीर पाकर जन्मा। मैं मन, वचन और कर्मसे शिवजीका सेवक और दूसरे देवताओंकी निन्दा करनेवाला अभिमानी था॥ १॥

धन मद मत्त परम बाचाला। उग्रबुद्धि उर दंभ बिसाला॥
जदपि रहेउँ रघुपति रजधानी। तदपि न कछु महिमा तब जानी॥ २॥

मैं धनके मदसे मतवाला, बहुत ही बकवादी और उग्र बुद्धिवाला था; मेरे हृदयमें बड़ा भारी दम्भ था। यद्यपि मैं श्रीरघुनाथजीकी राजधानीमें रहता था, तथापि मैंने उस समय उसकी महिमा कुछ भी नहीं जानी॥ २॥

अब जाना मैं अवध प्रभावा। निगमागम पुरान अस गावा॥
कवनेहुँ जन्म अवध बस जोई। राम परायन सो परि होई॥ ३॥

अब मैंने अवधका प्रभाव जाना। वेद, शास्त्र और पुराणोंने ऐसा गाया है कि किसी भी जन्ममें जो कोई भी अयोध्यामें बस जाता है, वह अवश्य ही श्रीरामजीके परायण हो जायगा॥ ३॥

अवध प्रभाव जान तब प्रानी। जब उर बसहिं रामु धनुपानी॥
सो कलिकाल कठिन उरगारी। पाप परायन सब नर नारी॥ ४॥

अवधका प्रभाव जीव तभी जानता है, जब हाथमें धनुष धारण करनेवाले श्रीरामजी उसके हृदयमें निवास करते हैं। हे गरुड़जी! वह कलिकाल बड़ा कठिन था। उसमें सभी नर-नारी पाप-परायण (पापोंमें लिप्त) थे॥ ४॥

दो०— कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सदग्रंथ।
दंभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रगट किए बहु पंथ॥ ९७(क)॥

कलियुगके पापोंने सब धर्मोंको ग्रस लिया, सद्ग्रन्थ लुप्त हो गये, दम्भियोंने अपनी

बुद्धिसे कल्पना कर-करके बहुत-से पंथ प्रकट कर दिये॥ ९७ (क)॥

भए लोग सब मोहबस लोभ ग्रसे सुभ कर्म।
सुनु हरिजान ग्यान निधि कहउँ कछुक कलिधर्म॥ ९७ (ख)॥

सभी लोग मोहके वश हो गये, शुभकर्मोंको लोभने हड़प लिया। हे ज्ञानके भण्डार! हे श्रीहरिके वाहन! सुनिये, अब मैं कलिके कुछ धर्म कहता हूँ॥ ९७ (ख)॥

चौ०—बरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति बिरोध रत सब नर नारी॥
द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन॥ १॥

कलियुगमें न वर्णधर्म रहता है, न चारों आश्रम रहते हैं। सब पुरुष-स्त्री वेदके विरोधमें लगे रहते हैं। ब्राह्मण वेदोंके बेचनेवाले और राजा प्रजाको खा डालनेवाले होते हैं। वेदकी आज्ञा कोई नहीं मानता॥ १॥

मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा॥
मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ता कहुँ संत कहइ सब कोई॥ २॥

जिसको जो अच्छा लग जाय, वही मार्ग है। जो डींग मारता है, वही पण्डित है। जो मिथ्या आरम्भ करता (आडम्बर रचता) है और जो दम्भमें रत है, उसीको सब कोई संत कहते हैं॥ २॥

सोइ सयान जो परधन हारी। जो कर दंभ सो बड़ आचारी॥
जो कह झूँठ मसखरी जाना। कलिजुग सोइ गुनवंत बखाना॥ ३॥

जो [जिस किसी प्रकारसे] दूसरेका धन हरण कर ले, वही बुद्धिमान् है। जो दम्भ करता है, वही बड़ा आचारी है। जो झूठ बोलता है और हँसी-दिल्लगी करना जानता है, कलियुगमें वही गुणवान् कहा जाता है॥ ३॥

निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। कलिजुग सोइ ग्यानी सो बिरागी॥
जाकें नख अरु जटा बिसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला॥ ४॥

जो आचारहीन है और वेदमार्गको छोड़े हुए है, कलियुगमें वही ज्ञानी और वही वैराग्यवान् है। जिसके बड़े-बड़े नख और लम्बी-लम्बी जटाएँ हैं, वही कलियुगमें प्रसिद्ध तपस्वी है॥ ४॥

दो०—असुभ बेष भूषन धरें भच्छाभच्छ जे खाहिं।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूज्य ते कलिजुग माहिं॥ ९८ (क)॥

जो अमङ्गल वेष और अमङ्गल भूषण धारण करते हैं, और भक्ष्य-अभक्ष्य (खाने योग्य और न खाने योग्य) सब कुछ खा लेते हैं, वे ही योगी हैं, वे ही सिद्ध हैं और वे ही मनुष्य कलियुगमें पूज्य हैं॥ ९८ (क)॥

सो०—जे अपकारी चार तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ।
मन क्रम बचन लबार तेइ बकता कलिकाल महुँ॥ ९८ (ख)॥

जिनके आचरण दूसरोंका अपकार (अहित) करनेवाले हैं, उन्हींका बड़ा गौरव होता है और वे ही सम्मानके योग्य होते हैं। जो मन, वचन और कर्मसे लबार (झूठ बकनेवाले) हैं, वे ही कलियुगमें वक्ता माने जाते हैं॥ ९८ (ख)॥

चौ०—नारि बिबस नर सकल गोसाईं। नाचहिं नट मर्कट की नाईं॥
सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ग्याना। मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना॥ १॥

हे गोसाईं! सभी मनुष्य स्त्रियोंके विशेष वशमें हैं और बाजीगरके बंदरकी तरह [उनके नचाये] नाचते हैं। ब्राह्मणोंको शूद्र ज्ञानोपदेश करते हैं और गलेमें जनेऊ डालकर कुत्सित दान लेते हैं॥ १॥

सब नर काम लोभ रत क्रोधी। देव बिप्र श्रुति संत बिरोधी॥
गुन मंदिर सुंदर पति त्यागी। भजहिं नारि पर पुरुष अभागी॥ २॥

सभी पुरुष काम और लोभमें तत्पर और क्रोधी होते हैं। देवता, ब्राह्मण, वेद और संतोंके विरोधी होते हैं। अभागिनी स्त्रियाँ गुणोंके धाम सुन्दर पतिको छोड़कर परपुरुषका सेवन करती हैं॥ २॥

सौभागिनीं बिभूषन हीना। बिधवन्ह के सिंगार नबीना॥
गुर सिष बधिर अंध का लेखा। एक न सुनइ एक नहिं देखा॥ ३॥

सुहागिनी स्त्रियाँ तो आभूषणोंसे रहित होती हैं, पर विधवाओंके नित्य नये शृङ्गार होते हैं। शिष्य और गुरुमें बहरे और अंधेका-सा हिसाब होता है। एक (शिष्य) गुरुके उपदेशको सुनता नहीं, एक (गुरु) देखता नहीं (उसे ज्ञानदृष्टि प्राप्त नहीं है)॥ ३॥

हरइ सिष्य धन सोक न हरई। सो गुर घोर नरक महुँ परई॥
मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं। उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं॥ ४॥

जो गुरु शिष्यका धन हरण करता है, पर शोक नहीं हरण करता, वह घोर नरकमें पड़ता है। माता-पिता बालकोंको बुलाकर वही धर्म सिखलाते हैं, जिससे पेट भरे॥ ४॥

दो०—ब्रह्म ग्यान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात।
कौड़ी लागि लोभ बस करहिं बिप्र गुर घात॥ ९९ (क)॥

स्त्री-पुरुष ब्रह्मज्ञानके सिवा दूसरी बात नहीं करते, पर वे लोभवश कौड़ियों (बहुत थोड़े लाभ)के लिये ब्राह्मण और गुरुकी हत्या कर डालते हैं॥ ९९ (क)॥

बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह ते कछु घाटि।
जानइ ब्रह्म सो बिप्रबर आँखि देखावहिं डाटि॥ ९९ (ख)॥

शूद्र ब्राह्मणोंसे विवाद करते हैं [और कहते हैं] कि हम क्या तुमसे कुछ कम हैं? जो ब्रह्मको जानता है वही श्रेष्ठ ब्राह्मण है। [ऐसा कहकर] वे उन्हें डाँटकर आँखें दिखलाते हैं॥ ९९ (ख)॥

चौ०—पर त्रिय लंपट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लपटाने॥
तेइ अभेदबादी ग्यानी नर। देखा मैं चरित्र कलिजुग कर॥ १॥

जो परायी स्त्रीमें आसक्त, कपट करनेमें चतुर और मोह, द्रोह और ममतामें लिपटे हुए हैं, वे ही मनुष्य अभेदवादी (ब्रह्म और जीवको एक बतानेवाले) ज्ञानी हैं। मैंने उस कलियुगका यह चरित्र देखा॥ १॥

आपु गए अरु तिन्हहू घालहिं। जे कहुँ सत मारग प्रतिपालहिं॥
कल्प कल्प भरि एक एक नरका। परहिं जे दूषहिं श्रुति करि तरका॥ २॥

वे स्वयं तो नष्ट हुए ही रहते हैं; जो कहीं सन्मार्गका प्रतिपालन करते हैं, उनको भी वे नष्ट कर देते हैं। जो तर्क करके वेदकी निन्दा करते हैं, वे लोग कल्प-कल्पभर एक-एक नरकमें पड़े रहते हैं॥ २॥

जे बरनाधम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलवारा॥
नारि मुई गृह संपति नासी। मूड़ मुड़ाइ होहिं संन्यासी॥ ३॥

तेली, कुम्हार, चाण्डाल, भील, कोल और कलवार आदि जो वर्णमें नीचे हैं, स्त्रीके मरनेपर अथवा घरकी सम्पत्ति नष्ट हो जानेपर सिर मुँड़ाकर संन्यासी हो जाते हैं॥ ३॥

ते बिप्रन्ह सन आपु पुजावहिं। उभय लोक निज हाथ नसावहिं॥
बिप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ बृषली स्वामी॥ ४॥

वे अपनेको ब्राह्मणोंसे पुजवाते हैं और अपने ही हाथों दोनों लोक नष्ट करते हैं। ब्राह्मण अपढ़, लोभी, कामी, आचारहीन, मूर्ख और नीची जातिकी व्यभिचारिणी स्त्रियोंके स्वामी होते हैं॥ ४॥

सूद्र करहिं जप तप ब्रत नाना। बैठि बरासन कहहिं पुराना॥
सब नर कल्पित करहिं अचारा। जाइ न बरनि अनीति अपारा॥ ५॥

शूद्र नाना प्रकारके जप, तप और व्रत करते हैं तथा ऊँचे आसन (व्यासगद्दी) पर बैठकर पुराण कहते हैं। सब मनुष्य मनमाना आचरण करते हैं। अपार अनीतिका वर्णन नहीं किया जा सकता॥ ५॥

दो०—भए बरन संकर कलि भिन्नसेतु सब लोग।
करहिं पाप पावहिं दुख भय रुज सोक बियोग॥ १०० (क)॥

कलियुगमें सब लोग वर्णसंकर और मर्यादासे च्युत हो गये। वे पाप करते हैं और [उनके फलस्वरूप] दुःख, भय, रोग, शोक और [प्रिय वस्तुका] वियोग पाते हैं॥ १०० (क)॥

श्रुति संमत हरि भक्ति पथ संजुत बिरति बिबेक।
तेहिं न चलहिं नर मोहबस कल्पहिं पंथ अनेक॥ १०० (ख)॥

वेदसम्मत तथा वैराग्य और ज्ञानसे युक्त जो हरिभक्तिका मार्ग है; मोहवश मनुष्य उसपर नहीं चलते और अनेकों नये-नये पंथोंकी कल्पना करते हैं ॥ १०० (ख)॥

छं०—बहु दाम सँवारहिं धाम जती। बिषया हरि लीन्हि न रहि बिरती॥
तपसी धनवंत दरिद्र गृही। कलि कौतुक तात न जात कही॥ १॥

संन्यासी बहुत धन लगाकर घर सजाते हैं। उनमें वैराग्य नहीं रहा, उसे विषयोंने हर लिया। तपस्वी धनवान् हो गये और गृहस्थ दरिद्र। हे तात! कलियुगकी लीला कुछ कही नहीं जाती॥ १॥

कुलवंति निकारहिं नारि सती। गृह आनहिं चेरि निबेरि गती॥
सुत मानहिं मातु पिता तब लौं। अबलानन दीख नहीं जब लौं॥ २॥

कुलवती और सती स्त्रीको पुरुष घरसे निकाल देते हैं और अच्छी चालको छोड़कर

घरमें दासीको ला रखते हैं। पुत्र अपने माता-पिताको तभीतक मानते हैं जबतक स्त्रीका मुँह नहीं दिखायी पड़ा॥ २॥

ससुरारि पिआरि लगी जब तें। रिपुरूप कुटुंब भए तब तें॥
नृप पाप परायन धर्म नहीं। करि दंड बिडंब प्रजा नितहीं॥ ३॥

जबसे ससुराल प्यारी लगने लगी, तबसे कुटुम्बी शत्रुरूप हो गये। राजा लोग पापपरायण हो गये, उनमें धर्म नहीं रहा। वे प्रजाको नित्य ही [बिना अपराध] दण्ड देकर उसकी विडम्बना (दुर्दशा) किया करते हैं॥ ३॥

धनवंत कुलीन मलीन अपी। द्विज चिन्ह जनेउ उघार तपी॥
नहिं मान पुरान न बेदहि जो। हरि सेवक संत सही कलि सो॥ ४॥

धनी लोग मलिन (नीच जातिके) होनेपर भी कुलीन माने जाते हैं। द्विजका चिह्न जनेऊमात्र रह गया और नंगे बदन रहना तपस्वीका। जो वेदों और पुराणोंको नहीं मानते, कलियुगमें वे ही हरिभक्त और सच्चे संत कहलाते हैं॥ ४॥

कबि बृंद उदार दुनी न सुनी। गुन दूषक ब्रात न कोपि गुनी॥
कलि बारहिं बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै॥ ५॥

कवियोंके तो झुंड हो गये, पर दुनियामें उदार (कवियोंका आश्रयदाता) सुनायी नहीं पड़ता। गुणमें दोष लगानेवाले बहुत हैं, पर गुणी कोई भी नहीं है। कलियुगमें बार-बार अकाल पड़ते हैं, अन्नके बिना सब लोग दुःखी होकर मरते हैं॥ ५॥

दो०—सुनु खगेस कलि कपट हठ दंभ द्वेष पाषंड।
मान मोह मारादि मद ब्यापि रहे ब्रह्मंड॥ १०१ (क)॥

हे पक्षिराज गरुड़जी! सुनिये, कलियुगमें कपट, हठ (दुराग्रह), दम्भ, द्वेष, पाखण्ड, मान, मोह और काम आदि (अर्थात् काम, क्रोध और लोभ) और मद ब्रह्माण्डभरमें व्याप्त हो गये (छा गये)॥ १०१ (क)॥

तामस धर्म करहिं नर जप तप ब्रत मख दान।
देव न बरषहिं धरनीं बए न जामहिं धान॥ १०१ (ख)॥

मनुष्य जप, तप, यज्ञ, व्रत और दान आदि धर्म तामसी भावसे करने लगे। देवता (इन्द्र) पृथ्वीपर जल नहीं बरसाते और बोया हुआ अन्न उगता नहीं॥ १०१ (ख)॥

छं०—अबला कच भूषन भूरि छुधा। धनहीन दुखी ममता बहुधा॥
सुख चाहहिं मूढ़ न धर्म रता। मति थोरि कठोरि न कोमलता॥ १॥

स्त्रियोंके बाल ही भूषण हैं (उनके शरीरपर कोई आभूषण नहीं रह गया) और उनको भूख बहुत लगती है (अर्थात् वे सदा अतृप्त ही रहती हैं)। वे धनहीन और बहुत प्रकारकी ममता होनेके कारण दुःखी रहती हैं। वे मूर्ख सुख चाहती हैं, पर धर्ममें उनका प्रेम नहीं है। बुद्धि थोड़ी है और कठोर है; उनमें कोमलता नहीं है॥ १॥

नर पीड़ित रोग न भोग कहीं। अभिमान बिरोध अकारनहीं॥
लघु जीवन संबतु पंच दसा। कलपांत न नास गुमानु असा॥ २॥

मनुष्य रोगोंसे पीड़ित हैं, भोग (सुख) कहीं नहीं है। बिना ही कारण अभिमान

और विरोध करते हैं। दस-पाँच वर्षका थोड़ा-सा जीवन है, परन्तु घमण्ड ऐसा है मानो कल्पान्त (प्रलय) होनेपर भी उनका नाश नहीं होगा॥ २॥

कलिकाल बिहाल किए मनुजा। नहिं मानत क्वौ अनुजा तनुजा॥
नहिं तोष बिचार न सीतलता। सब जाति कुजाति भए मगता॥ ३॥

कलिकालने मनुष्यको बेहाल (अस्त-व्यस्त) कर डाला। कोई बहिन-बेटीका भी विचार नहीं करता। [लोगोंमें] न सन्तोष है, न विवेक है और न शीतलता है। जाति, कुजाति सभी लोग भीख माँगनेवाले हो गये॥ ३॥

इरिषा परुषाच्छर लोलुपता। भरि पूरि रही समता बिगता॥
सब लोग बियोग बिसोक हए। बरनाश्रम धर्म अचार गए॥ ४॥

ईर्ष्या (डाह), कड़ुवे वचन और लालच भरपूर हो रहे हैं, समता चली गयी। सब लोग वियोग और विशेष शोकसे भरे पड़े हैं। वर्णाश्रम-धर्मके आचरण नष्ट हो गये॥ ४॥

दम दान दया नहिं जानपनी। जड़ता परबंचनताति घनी॥
तनु पोषक नारि नरा सगरे। परनिंदक जे जग मो बगरे॥ ५॥

इन्द्रियोंका दमन, दान, दया और समझदारी किसीमें नहीं रही। मूर्खता और दूसरोंको ठगना, यह बहुत अधिक बढ़ गया। स्त्री-पुरुष सभी शरीरके ही पालन-पोषणमें लगे रहते हैं। जो परायी निन्दा करनेवाले हैं, जगत्‌में वे ही फैले हैं॥ ५॥

दो०—सुनु ब्यालारि काल कलि मल अवगुन आगार।
गुनउ बहुत कलिजुग कर बिनु प्रयास निस्तार॥ १०२ (क)॥

हे सर्पोंके शत्रु गरुड़जी! सुनिये, कलिकाल पाप और अवगुणोंका घर है। किन्तु कलियुगमें एक गुण भी बड़ा है कि उसमें बिना ही परिश्रम भवबन्धनसे छुटकारा मिल जाता है॥ १०२ (क)॥

कृतजुग त्रेताँ द्वापर पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग॥ १०२ (ख)॥

सत्ययुग, त्रेता और द्वापरमें जो गति पूजा, यज्ञ और योगसे प्राप्त होती है, वही गति कलियुगमें लोग केवल भगवान्‌के नामसे पा जाते हैं॥ १०२ (ख)॥

चौ०—कृतजुग सब जोगी बिग्यानी। करि हरि ध्यान तरहिं भव प्रानी॥
त्रेताँ बिबिध जग्य नर करहीं। प्रभुहि समर्पि कर्म भव तरहीं॥ १॥

सत्ययुगमें सब योगी और विज्ञानी होते हैं। हरिका ध्यान करके सब प्राणी भवसागरसे तर जाते हैं। त्रेतामें मनुष्य अनेक प्रकारके यज्ञ करते हैं और सब कर्मोंको प्रभुके समर्पण करके भवसागरसे पार हो जाते हैं॥ १॥

द्वापर करि रघुपति पद पूजा। नर भव तरहिं उपाय न दूजा॥
कलिजुग केवल हरि गुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा॥ २॥

द्वापरमें श्रीरघुनाथजीके चरणोंकी पूजा करके मनुष्य संसारसे तर जाते हैं, दूसरा कोई उपाय नहीं है और कलियुगमें तो केवल श्रीहरिकी गुणगाथाओंका गान करनेसे

ही मनुष्य भवसागरकी थाह पा जाते हैं॥ २॥

कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना। एक अधार राम गुन गाना॥
सब भरोस तजि जो भज रामहि। प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहि॥ ३॥

कलियुगमें न तो योग और यज्ञ है और न ज्ञान ही है। श्रीरामजीका गुणगान ही एकमात्र आधार है। अतएव सारे भरोसे त्यागकर जो श्रीरामजीको भजता है और प्रेमसहित उनके गुणसमूहोंको गाता है,॥ ३॥

सोइ भव तर कछु संसय नाहीं। नाम प्रताप प्रगट कलि माहीं॥
कलि कर एक पुनीत प्रतापा। मानस पुन्य होहिं नहिं पापा॥ ४॥

वही भवसागरसे तर जाता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। नामका प्रताप कलियुगमें प्रत्यक्ष है। कलियुगका एक पवित्र प्रताप (महिमा) है कि मानसिक पुण्य तो होते हैं, पर [मानसिक] पाप नहीं होते॥ ४॥

दो०—कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥ १०३ (क)॥

यदि मनुष्य विश्वास करे, तो कलियुगके समान दूसरा युग नहीं है। [क्योंकि] इस युगमें श्रीरामजीके निर्मल गुणसमूहोंको गा-गाकर मनुष्य बिना ही परिश्रम संसार [रूपी समुद्र] से तर जाता है॥ १०३ (क)॥

प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान॥ १०३ (ख)॥

धर्मके चार चरण (सत्य, दया, तप और दान) प्रसिद्ध हैं, जिनमेंसे कलिमें एक [दानरूपी] चरण ही प्रधान है। जिस-किसी प्रकारसे भी दिये जानेपर दान कल्याण ही करता है॥ १०३ (ख)॥

चौ०—नित जुग धर्म होहिं सब केरे। हृदयँ राम माया के प्रेरे॥
सुद्ध सत्व समता बिग्याना। कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना॥ १॥

श्रीरामजीकी मायासे प्रेरित होकर सबके हृदयोंमें सभी युगोंके धर्म नित्य होते रहते हैं। शुद्ध सत्त्वगुण, समता, विज्ञान और मनका प्रसन्न होना, इसे सत्ययुगका प्रभाव जाने॥ १॥

सत्व बहुत रज कछु रति कर्मा। सब बिधि सुख त्रेता कर धर्मा॥
बहु रज स्वल्प सत्व कछु तामस। द्वापर धर्म हरष भय मानस॥ २॥

सत्त्वगुण अधिक हो, कुछ रजोगुण हो, कर्मोंमें प्रीति हो, सब प्रकारसे सुख हो, यह त्रेताका धर्म है। रजोगुण बहुत हो, सत्त्वगुण बहुत ही थोड़ा हो, कुछ तमोगुण हो, मनमें हर्ष और भय हो, यह द्वापरका धर्म है॥ २॥

तामस बहुत रजोगुन थोरा। कलि प्रभाव बिरोध चहुँ ओरा॥
बुध जुग धर्म जानि मन माहीं। तजि अधर्म रति धर्म कराहीं॥ ३॥

तमोगुण बहुत हो, रजोगुण थोड़ा हो, चारों ओर वैर-विरोध हो, यह कलियुगका प्रभाव है। पण्डित लोग युगोंके धर्मको मनमें जान (पहिचान) कर, अधर्म छोड़कर

धर्ममें प्रीति करते हैं॥ ३॥

काल धर्म नहिं ब्यापहिं ताही। रघुपति चरन प्रीति अति जाही॥
नट कृत बिकट कपट खगराया। नट सेवकहि न ब्यापइ माया॥ ४॥

जिसका श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें अत्यन्त प्रेम है, उसको कालधर्म (युगधर्म) नहीं व्यापते। हे पक्षिराज! नट (बाजीगर) का किया हुआ कपट-चरित्र (इन्द्रजाल) देखनेवालोंके लिये बड़ा विकट (दुर्गम) होता है, पर नटके सेवक (जंभूरे) को उसकी माया नहीं व्यापती॥ ४॥

दो०—हरि माया कृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहिं।
भजिअ राम तजि काम सब अस बिचारि मन माहिं॥ १०४ (क)॥

श्रीहरिकी मायाके द्वारा रचे हुए दोष और गुण श्रीहरिके भजन बिना नहीं जाते। मनमें ऐसा विचार कर, सब कामनाओंको छोड़कर (निष्कामभावसे) श्रीरामजीका भजन करना चाहिये॥ १०४ (क)॥

तेहिं कलिकाल बरष बहु बसेउँ अवध बिहगेस।
परेउ दुकाल बिपति बस तब मैं गयउँ बिदेस॥ १०४ (ख)॥

हे पक्षिराज! उस कलिकालमें मैं बहुत वर्षोंतक अयोध्यामें रहा। एक बार वहाँ अकाल पड़ा, तब मैं विपत्तिका मारा विदेश चला गया॥ १०४ (ख)॥

चौ०—गयउँ उजेनी सुनु उरगारी। दीन मलीन दरिद्र दुखारी॥
गएँ काल कछु संपति पाई। तहँ पुनि करउँ संभु सेवकाई॥ १॥

हे सर्पोंके शत्रु गरुड़जी! सुनिये, मैं दीन, मलीन (उदास), दरिद्र और दुःखी होकर उज्जैन गया। कुछ काल बीतनेपर कुछ सम्पत्ति पाकर फिर मैं वहीं भगवान् शङ्करकी आराधना करने लगा॥ १॥

बिप्र एक बैदिक सिव पूजा। करइ सदा तेहि काजु न दूजा॥
परम साधु परमारथ बिंदक। संभु उपासक नहिं हरि निंदक॥ २॥

एक ब्राह्मण वेदविधिसे सदा शिवजीकी पूजा करते, उन्हें दूसरा कोई काम न था। वे परम साधु और परमार्थके ज्ञाता थे। वे शम्भुके उपासक थे, पर श्रीहरिकी निन्दा करनेवाले न थे॥ २॥

तेहि सेवउँ मैं कपट समेता। द्विज दयाल अति नीति निकेता॥
बाहिज नम्र देखि मोहि साईं। बिप्र पढ़ाव पुत्र की नाईं॥ ३॥

मैं कपटपूर्वक उनकी सेवा करता। ब्राह्मण बड़े ही दयालु और नीतिके घर थे। हे स्वामी! बाहरसे नम्र देखकर ब्राह्मण मुझे पुत्रकी भाँति मानकर पढ़ाते थे॥ ३॥

संभु मंत्र मोहि द्विजबर दीन्हा। सुभ उपदेस बिबिध बिधि कीन्हा॥
जपउँ मंत्र सिव मंदिर जाई। हृदयँ दंभ अहमिति अधिकाई॥ ४॥

उन ब्राह्मणश्रेष्ठने मुझको शिवजीका मन्त्र दिया और अनेकों प्रकारके शुभ उपदेश किये। मैं शिवजीके मन्दिरमें जाकर मन्त्र जपता। मेरे हृदयमें दम्भ और अहंकार बढ़ गया॥ ४॥

दो०—मैं खल मल संकुल मति नीच जाति बस मोह।
हरि जन द्विज देखें जरउँ करउँ बिष्नु कर द्रोह॥ १०५ (क)॥

मैं दुष्ट, नीच जाति और पापमयी मलिन बुद्धिवाला मोहवश श्रीहरिके भक्तों और द्विजोंको देखते ही जल उठता और विष्णुभगवान्‌से द्रोह करता था॥ १०५ (क)॥

सो०—गुर नित मोहि प्रबोध दुखित देखि आचरन मम।
मोहि उपजइ अति क्रोध दंभिहि नीति कि भावई॥ १०५ (ख)॥

गुरुजी मेरे आचरण देखकर दुःखित थे। वे मुझे नित्य ही भलीभाँति समझाते, पर [मैं कुछ भी नहीं समझता,] उलटे मुझे अत्यन्त क्रोध उत्पन्न होता। दम्भीको कभी नीति अच्छी लगती है?॥ १०५ (ख)॥

चौ०—एक बार गुर लीन्ह बोलाई। मोहि नीति बहु भाँति सिखाई॥
सिव सेवा कर फल सुत सोई। अबिरल भगति राम पद होई॥ १॥

एक बार गुरुजीने मुझे बुला लिया और बहुत प्रकारसे [परमार्थ] नीतिकी शिक्षा दी कि हे पुत्र! शिवजीकी सेवाका फल यही है कि श्रीरामजीके चरणोंमें प्रगाढ़ भक्ति हो॥ १॥

रामहि भजहिं तात सिव धाता। नर पावँर कै केतिक बाता॥
जासु चरन अज सिव अनुरागी। तासु द्रोहँ सुख चहसि अभागी॥ २॥

हे तात! शिवजी और ब्रह्माजी भी श्रीरामजीको भजते हैं, [फिर] नीच मनुष्यकी तो बात ही कितनी है? ब्रह्माजी और शिवजी जिनके चरणोंके प्रेमी हैं, अरे अभागे! उनसे द्रोह करके तू सुख चाहता है?॥ २॥

हर कहुँ हरि सेवक गुर कहेऊ। सुनि खगनाथ हृदय मम दहेऊ॥
अधम जाति मैं बिद्या पाएँ। भयउँ जथा अहि दूध पिआएँ॥ ३॥

गुरुजीने शिवजीको हरिका सेवक कहा। यह सुनकर हे पक्षिराज! मेरा हृदय जल उठा। नीच जातिका मैं विद्या पाकर ऐसा हो गया जैसे दूध पिलानेसे साँप॥ ३॥

मानी कुटिल कुभाग्य कुजाती। गुर कर द्रोह करउँ दिनु राती॥
अति दयाल गुर स्वल्प न क्रोधा। पुनि पुनि मोहि सिखाव सुबोधा॥ ४॥

अभिमानी, कुटिल, दुर्भाग्य और कुजाति मैं दिन-रात गुरुजीसे द्रोह करता। गुरुजी अत्यन्त दयालु थे, उनको थोड़ा-सा भी क्रोध नहीं आता। [मेरे द्रोह करनेपर भी] वे बार-बार मुझे उत्तम ज्ञानकी ही शिक्षा देते थे॥ ४॥

जेहि ते नीच बड़ाई पावा। सो प्रथमहिं हति ताहि नसावा॥
धूम अनल संभव सुनु भाई। तेहि बुझाव घन पदवी पाई॥ ५॥

नीच मनुष्य जिससे बड़ाई पाता है, वह सबसे पहले उसीको मारकर उसीका नाश करता है। हे भाई! सुनिये, आगसे उत्पन्न हुआ धुआँ मेघकी पदवी पाकर उसी अग्निको बुझा देता है॥ ५॥

रज मग परी निरादर रहई। सब कर पद प्रहार नित सहई॥
मरुत उड़ाव प्रथम तेहि भरई। पुनि नृप नयन किरीटन्हि परई॥ ६॥

धूल रास्तेमें निरादरसे पड़ी रहती है और सदा सब [राह चलनेवालों] के लातोंकी मार सहती है। पर जब पवन उसे उड़ाता (ऊँचा उठाता) है, तो सबसे पहले वह उसी (पवन) को भर देती है और फिर राजाओंके नेत्रों और किरीटों (मुकुटों) पर पड़ती है॥ ६॥

सुनु खगपति अस समुझि प्रसंगा। बुध नहिं करहिं अधम कर संगा॥
कबि कोबिद गावहिं असि नीती। खल सन कलह न भल नहिं प्रीती॥ ७॥

हे पक्षिराज गरुड़जी! सुनिये, ऐसी बात समझकर बुद्धिमान् लोग अधम (नीच) का संग नहीं करते। कवि और पण्डित ऐसी नीति कहते हैं कि दुष्टसे न कलह ही अच्छा है, न प्रेम ही॥ ७॥

उदासीन नित रहिअ गोसाईं। खल परिहरिअ स्वान की नाईं॥
मैं खल हृदयँ कपट कुटिलाई। गुर हित कहइ न मोहि सोहाई॥ ८॥

हे गोसाईं! उससे तो सदा उदासीन ही रहना चाहिये। दुष्टको कुत्तेकी तरह दूरसे ही त्याग देना चाहिये। मैं दुष्ट था, हृदयमें कपट और कुटिलता भरी थी। [इसीलिये यद्यपि] गुरुजी हितकी बात कहते थे, पर मुझे वह सुहाती न थी॥ ८॥

दो०—एक बार हर मंदिर जपत रहेउँ सिव नाम।
गुर आयउ अभिमान तें उठि नहिं कीन्ह प्रनाम॥ १०६ (क)॥

एक दिन मैं शिवजीके मन्दिरमें शिवनाम जप रहा था। उसी समय गुरुजी वहाँ आये, पर अभिमानके मारे मैंने उठकर उनको प्रणाम नहीं किया॥ १०६ (क)॥

सो दयाल नहिं कहेउ कछु उर न रोष लवलेस।
अति अघ गुर अपमानता सहि नहिं सके महेस॥ १०६ (ख)॥

गुरुजी दयालु थे, [मेरा दोष देखकर भी] उन्होंने कुछ नहीं कहा; उनके हृदयमें लेशमात्र भी क्रोध नहीं हुआ। पर गुरुका अपमान बहुत बड़ा पाप है, अतः महादेवजी उसे नहीं सह सके॥ १०६ (ख)॥

चौ०—मंदिर माझ भई नभबानी। रे हतभाग्य अग्य अभिमानी॥
जद्यपि तव गुर कें नहिं क्रोधा। अति कृपाल चित सम्यक बोधा॥ १॥

मन्दिरमें आकाशवाणी हुई कि अरे हतभाग्य! मूर्ख! अभिमानी! यद्यपि तेरे गुरुको क्रोध नहीं है, वे अत्यन्त कृपालु चित्तके हैं और उन्हें [पूर्ण तथा] यथार्थ ज्ञान है,॥ १॥

तदपि साप सठ दैहउँ तोही। नीति बिरोध सोहाइ न मोही॥
जौं नहिं दंड करौं खल तोरा। भ्रष्ट होइ श्रुतिमारग मोरा॥ २॥

तो भी हे मूर्ख! तुझको मैं शाप दूँगा। [क्योंकि] नीतिका विरोध मुझे अच्छा नहीं लगता। अरे दुष्ट! यदि मैं तुझे दण्ड न दूँ, तो मेरा वेदमार्ग ही भ्रष्ट हो जाय॥ २॥

जे सठ गुर सन इरिषा करहीं। रौरव नरक कोटि जुग परहीं॥
त्रिजग जोनि पुनि धरहिं सरीरा। अयुत जन्म भरि पावहिं पीरा॥ ३॥

जो मूर्ख गुरुसे ईर्ष्या करते हैं, वे करोड़ों युगोंतक रौरव नरकमें पड़े रहते हैं। फिर (वहाँसे निकलकर) वे तिर्यक् (पशु, पक्षी आदि) योनियोंमें शरीर धारण करते

हैं और दस हजार जन्मोंतक दुःख पाते रहते हैं॥ ३॥

बैठि रहेसि अजगर इव पापी। सर्प होहि खल मल मति ब्यापी॥
महा बिटप कोटर महुँ जाई। रहु अधमाधम अधगति पाई॥ ४॥

अरे पापी! तू गुरुके सामने अजगरकी भाँति बैठा रहा। रे दुष्ट! तेरी बुद्धि पापसे ढक गयी है, [अतः] तू सर्प हो जा। और अरे अधमसे भी अधम! इस अधोगति (सर्पकी नीची योनि) को पाकर किसी बड़े भारी पेड़के खोखलेमें जाकर रह॥ ४॥

दो०—हाहाकार कीन्ह गुर दारुन सुनि सिव साप।
कंपित मोहि बिलोकि अति उर उपजा परिताप॥ १०७ (क)॥

शिवजीका भयानक शाप सुनकर गुरुजीने हाहाकार किया। मुझे काँपता हुआ देखकर उनके हृदयमें बड़ा सन्ताप उत्पन्न हुआ॥ १०७ (क)॥

करि दंडवत सप्रेम द्विज सिव सन्मुख कर जोरि।
बिनय करत गदगद स्वर समुझि घोर गति मोरि॥ १०७ (ख)॥

प्रेमसहित दण्डवत् करके वे ब्राह्मण श्रीशिवजीके सामने हाथ जोड़कर मेरी भयङ्कर गति (दण्ड) का विचार कर गद्गद वाणीसे विनती करने लगे—॥ १०७ (ख)॥

छं०—नमामीशमीशान निर्वाणरूपं। विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं॥
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं। चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं॥ १॥

हे मोक्षस्वरूप, विभु, व्यापक ब्रह्म और वेदस्वरूप, ईशान दिशाके ईश्वर तथा सबके स्वामी श्रीशिवजी! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। निजस्वरूपमें स्थित (अर्थात् मायादिरहित), [मायिक] गुणोंसे रहित, भेदरहित, इच्छारहित, चेतन आकाशरूप एवं आकाशको ही वस्त्ररूपमें धारण करनेवाले दिगम्बर [अथवा आकाशको भी आच्छादित करनेवाले] आपको मैं भजता हूँ॥ १॥

निराकारमोंकारमूलं तुरीयं। गिरा ग्यान गोतीतमीशं गिरीशं॥
करालं महाकाल कालं कृपालं। गुणागार संसारपारं नतोऽहं॥ २॥

निराकार, ओङ्कारके मूल, तुरीय (तीनों गुणोंसे अतीत), वाणी, ज्ञान और इन्द्रियोंसे परे, कैलासपति, विकराल, महाकालके भी काल, कृपालु, गुणोंके धाम, संसारसे परे आप परमेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ॥ २॥

तुषाराद्रि संकाश गौरं गभीरं। मनोभूत कोटि प्रभा श्रीशरीरं॥
स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा। लसद्भालबालेन्दु कंठे भुजंगा॥ ३॥

जो हिमाचलके समान गौरवर्ण तथा गम्भीर हैं, जिनके शरीरमें करोड़ों कामदेवोंकी ज्योति एवं शोभा है, जिनके सिरपर सुन्दर नदी गङ्गाजी विराजमान हैं, जिनके ललाटपर द्वितीयाका चन्द्रमा और गलेमें सर्प सुशोभित हैं॥ ३॥

चलत्कुंडलं भ्रू सुनेत्रं विशालं। प्रसन्नाननं नीलकंठं दयालं॥
मृगाधीशचर्माम्बरं मुण्डमालं। प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि॥ ४॥

जिनके कानोंमें कुण्डल हिल रहे हैं, सुन्दर भ्रुकुटी और विशाल नेत्र हैं; जो प्रसन्नमुख, नीलकण्ठ और दयालु हैं; सिंहचर्मका वस्त्र धारण किये और मुण्डमाला पहने

हैं; उन सबके प्यारे और सबके नाथ [कल्याण करनेवाले] श्रीशङ्करजीको मैं भजता हूँ॥ ४॥

प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं। अखंडं अजं भानुकोटिप्रकाशं॥
त्रयः शूल निर्मूलनं शूलपाणिं। भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यं॥ ५॥

प्रचण्ड (रुद्ररूप), श्रेष्ठ, तेजस्वी, परमेश्वर, अखण्ड, अजन्मा, करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशवाले, तीनों प्रकारके शूलों (दुःखों) को निर्मूल करनेवाले, हाथमें त्रिशूल धारण किये, भाव (प्रेम) के द्वारा प्राप्त होनेवाले भवानीके पति श्रीशङ्करजीको मैं भजता हूँ॥ ५॥

कलातीत कल्याण कल्पान्तकारी। सदा सज्जनानन्ददाता पुरारी॥
चिदानंद संदोह मोहापहारी। प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी॥ ६॥

कलाओंसे परे, कल्याणस्वरूप, कल्पका अन्त (प्रलय) करनेवाले, सज्जनोंको सदा आनन्द देनेवाले, त्रिपुरके शत्रु, सच्चिदानन्दघन, मोहको हरनेवाले, मनको मथ डालनेवाले कामदेवके शत्रु, हे प्रभो! प्रसन्न हूजिये, प्रसन्न हूजिये॥ ६॥

न यावद् उमानाथ पादारविन्दं। भजंतीह लोके परे वा नराणां॥
न तावत्सुखं शान्ति सन्तापनाशं। प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासं॥ ७॥

जबतक पार्वतीके पति आपके चरणकमलोंको मनुष्य नहीं भजते, तबतक उन्हें न तो इहलोक और परलोकमें सुख-शान्ति मिलती है और न उनके तापोंका नाश होता है। अतः हे समस्त जीवोंके अन्दर (हृदयमें) निवास करनेवाले प्रभो! प्रसन्न हूजिये॥ ७॥

न जानामि योगं जपं नैव पूजां। नतोऽहं सदा सर्वदा शंभु तुभ्यं॥
जरा जन्म दुःखौघ तातप्यमानं। प्रभो पाहि आपन्नमामीश शंभो॥ ८॥

मैं न तो योग जानता हूँ, न जप और न पूजा ही। हे शम्भो! मैं तो सदा-सर्वदा आपको ही नमस्कार करता हूँ। हे प्रभो! बुढ़ापा तथा जन्म [मृत्यु] के दुःखसमूहोंसे जलते हुए मुझ दुःखीकी दुःखसे रक्षा कीजिये। हे ईश्वर! हे शम्भो! मैं आपको नमस्कार करता हूँ॥ ८॥

श्लोक—रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये।
ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भुः प्रसीदति॥ ९॥

भगवान् रुद्रकी स्तुतिका यह अष्टक उन शङ्करजीकी तुष्टि (प्रसन्नता) के लिये ब्राह्मणद्वारा कहा गया। जो मनुष्य इसे भक्तिपूर्वक पढ़ते हैं, उनपर भगवान् शम्भु प्रसन्न होते हैं॥ ९॥

दो०—सुनि बिनती सर्बग्य सिव देखि बिप्र अनुरागु।
पुनि मंदिर नभबानी भइ द्विजबर बर मागु॥ १०८ (क)॥

सर्वज्ञ शिवजीने विनती सुनी और ब्राह्मणका प्रेम देखा। तब मन्दिरमें आकाशवाणी हुई कि हे द्विजश्रेष्ठ! वर माँगो॥ १०८ (क)॥

जौं प्रसन्न प्रभु मो पर नाथ दीन पर नेहु।
निज पद भगति देइ प्रभु पुनि दूसर बर देहु॥ १०८ (ख)॥

[ब्राह्मणने कहा—] हे प्रभो! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और हे नाथ! यदि इस दीनपर आपका स्नेह है, तो पहले अपने चरणोंकी भक्ति देकर फिर दूसरा वर दीजिये॥ १०८ (ख)॥

तव माया बस जीव जड़ संतत फिरइ भुलान।
तेहि पर क्रोध न करिअ प्रभु कृपासिंधु भगवान॥ १०८ (ग)॥

हे प्रभो! यह अज्ञानी जीव आपकी मायाके वश होकर निरन्तर भूला फिरता है। हे कृपाके समुद्र भगवान्! उसपर क्रोध न कीजिये॥ १०८ (ग)॥

संकर दीनदयाल अब एहि पर होहु कृपाल।
साप अनुग्रह होइ जेहिं नाथ थोरेहीं काल॥ १०८ (घ)॥

हे दीनोंपर दया करनेवाले [कल्याणकारी] शङ्कर! अब इसपर कृपालु होइये (कृपा कीजिये), जिससे हे नाथ! थोड़े ही समयमें इसपर शापके बाद अनुग्रह (शापसे मुक्ति) हो जाय॥ १०८ (घ)॥

चौ०—एहि कर होइ परम कल्याना। सोइ करहु अब कृपानिधाना॥
बिप्रगिरा सुनि परहित सानी। एवमस्तु इति भइ नभबानी॥ १॥

हे कृपानिधान! अब वही कीजिये जिससे इसका परम कल्याण हो। दूसरेके हितसे सनी हुई ब्राह्मणकी वाणी सुनकर फिर आकाशवाणी हुई—'एवमस्तु' (ऐसा ही हो)॥ १॥

जदपि कीन्ह एहिं दारुन पापा। मैं पुनि दीन्हि कोप करि सापा॥
तदपि तुम्हारि साधुता देखी। करिहउँ एहि पर कृपा बिसेषी॥ २॥

यद्यपि इसने भयानक पाप किया है और मैंने भी इसे क्रोध करके शाप दिया है, तो भी तुम्हारी साधुता देखकर मैं इसपर विशेष कृपा करूँगा॥ २॥

छमासील जे पर उपकारी। ते द्विज मोहि प्रिय जथा खरारी॥
मोर श्राप द्विज ब्यर्थ न जाइहि। जन्म सहस अवस्य यह पाइहि॥ ३॥

हे द्विज! जो क्षमाशील एवं परोपकारी होते हैं, वे मुझे वैसे ही प्रिय हैं जैसे खरारि श्रीरामचन्द्रजी। हे द्विज! मेरा शाप व्यर्थ नहीं जायेगा। यह हजार जन्म अवश्य पावेगा॥ ३॥

जनमत मरत दुसह दुख होई। एहि स्वल्पउ नहिं ब्यापिहि सोई॥
कवनेउँ जन्म मिटिहि नहिं ग्याना। सुनहि सूद्र मम बचन प्रवाना॥ ४॥

परन्तु जन्मने और मरनेमें जो दुःसह दुःख होता है, इसको वह दुःख जरा भी न व्यापेगा और किसी भी जन्ममें इसका ज्ञान नहीं मिटेगा। हे शूद्र! मेरा प्रामाणिक (सत्य) वचन सुन॥ ४॥

रघुपति पुरीं जन्म तव भयऊ। पुनि तैं मम सेवाँ मन दयऊ॥
पुरी प्रभाव अनुग्रह मोरें। राम भगति उपजिहि उर तोरें॥ ५॥

[प्रथम तो] तेरा जन्म श्रीरघुनाथजीकी पुरीमें हुआ। फिर तूने मेरी सेवामें मन लगाया। पुरीके प्रभाव और मेरी कृपासे तेरे हृदयमें रामभक्ति उत्पन्न होगी॥ ५॥

सुनु मम बचन सत्य अब भाई। हरितोषन ब्रत द्विज सेवकाई॥
अब जनि करहि बिप्र अपमाना। जानेसु संत अनंत समाना॥ ६॥

हे भाई! अब मेरा सत्य वचन सुन। द्विजोंकी सेवा ही भगवान्‌को प्रसन्न करनेवाला व्रत है। अब कभी ब्राह्मणका अपमान न करना। संतोंको अनन्त श्रीभगवान्‌हीके समान जानना॥ ६॥

इंद्र कुलिस मम सूल बिसाला। कालदंड हरि चक्र कराला॥
जो इन्ह कर मारा नहिं मरई। बिप्र द्रोह पावक सो जरई॥ ७॥

इन्द्रके वज्र, मेरे विशाल त्रिशूल, कालके दण्ड और श्रीहरिके विकराल चक्रके मारे भी जो नहीं मरता, वह भी विप्रद्रोहरूपी अग्निसे भस्म हो जाता है॥ ७॥

अस बिबेक राखेहु मन माहीं। तुम्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।
औरउ एक आसिषा मोरी। अप्रतिहत गति होइहि तोरी॥ ८॥

ऐसा विवेक मनमें रखना। फिर तुम्हारे लिये जगत्‌में कुछ भी दुर्लभ न होगा। मेरा एक और भी आशीर्वाद है कि तुम्हारी सर्वत्र अबाध गति होगी (अर्थात् तुम जहाँ जाना चाहोगे, वहीं बिना रोक-टोकके जा सकोगे)॥ ८॥

दो०—सुनि सिव बचन हरषि गुर एवमस्तु इति भाषि।
मोहि प्रबोधि गयउ गृह संभु चरन उर राखि॥ १०९ (क)॥

[आकाशवाणीके द्वारा] शिवजीके वचन सुनकर गुरुजी हर्षित होकर 'ऐसा ही हो' यह कहकर मुझे बहुत समझाकर और शिवजीके चरणोंको हृदयमें रखकर अपने घर गये॥ १०९ (क)॥

प्रेरित काल बिंधिगिरि जाइ भयउँ मैं ब्याल।
पुनि प्रयासु बिनु सो तनु तजेउँ गएँ कछु काल॥ १०९ (ख)॥

कालकी प्रेरणासे मैं विन्ध्याचलमें जाकर सर्प हुआ। फिर कुछ काल बीतनेपर बिना ही परिश्रम (कष्ट) के मैंने वह शरीर त्याग दिया॥ १०९ (ख)॥

जोइ तनु धरउँ तजउँ पुनि अनायास हरिजान।
जिमि नूतन पट पहिरइ नर परिहरइ पुरान॥ १०९ (ग)॥

हे हरिवाहन! मैं जो भी शरीर धारण करता, उसे बिना ही परिश्रम वैसे ही सुखपूर्वक त्याग देता था, जैसे मनुष्य पुराना वस्त्र त्याग देता है और नया पहिन लेता है॥ १०९ (ग)॥

सिवँ राखी श्रुति नीति अरु मैं नहिं पावा क्लेस।
एहि बिधि धरेउँ बिबिधि तनु ग्यान न गयउ खगेस॥ १०९ (घ)॥

शिवजीने वेदकी मर्यादाकी रक्षा की और मैंने क्लेश भी नहीं पाया। इस प्रकार हे पक्षिराज! मैंने बहुत-से शरीर धारण किये, पर मेरा ज्ञान नहीं गया॥ १०९ (घ)॥

चौ०—त्रिजग देव नर जोइ तनु धरऊँ। तहँ तहँ राम भजन अनुसरऊँ॥
एक सूल मोहि बिसर न काऊ। गुर कर कोमल सील सुभाऊ॥ १॥

तिर्यक्-योनि (पशु-पक्षी), देवता या मनुष्यका, जो भी शरीर धारण करता, वहाँ-वहाँ (उस-उस शरीरमें) मैं श्रीरामजीका भजन जारी रखता। [इस प्रकार मैं सुखी हो

गया] परन्तु एक शूल मुझे बना रहा। गुरुजीका कोमल, सुशील स्वभाव मुझे कभी नहीं भूलता। (अर्थात् मैंने ऐसे कोमलस्वभाव दयालु गुरुका अपमान किया, यह दुःख मुझे सदा बना रहा)॥ १॥

चरम देह द्विज कै मैं पाई। सुर दुर्लभ पुरान श्रुति गाई॥
खेलउँ तहूँ बालकन्ह मीला। करउँ सकल रघुनायक लीला॥ २॥

मैंने अन्तिम शरीर ब्राह्मणका पाया, जिसे पुराण और वेद देवताओंको भी दुर्लभ बताते हैं। मैं वहाँ (ब्राह्मण-शरीरमें) भी बालकोंमें मिलकर खेलता तो श्रीरघुनाथजीकी ही सब लीलाएँ किया करता॥ २॥

प्रौढ़ भएँ मोहि पिता पढ़ावा। समझउँ सुनउँ गुनउँ नहिं भावा॥
मन ते सकल बासना भागी। केवल राम चरन लय लागी॥ ३॥

सयाना होनेपर पिताजी मुझे पढ़ाने लगे। मैं समझता, सुनता और विचारता, पर मुझे पढ़ना अच्छा नहीं लगता था। मेरे मनसे सारी वासनाएँ भाग गयीं। केवल श्रीरामजीके चरणोंमें लव लग गयी॥ ३॥

कहु खगेस अस कवन अभागी। खरी सेव सुरधेनुहि त्यागी॥
प्रेम मगन मोहि कछु न सोहाई। हारेउ पिता पढ़ाइ पढ़ाई॥ ४॥

हे गरुड़जी! कहिये, ऐसा कौन अभागा होगा जो कामधेनुको छोड़कर गदहीकी सेवा करेगा? प्रेममें मग्न रहनेके कारण मुझे कुछ भी नहीं सुहाता। पिताजी पढ़ा-पढ़ाकर हार गये॥ ४॥

भए कालबस जब पितु माता। मैं बन गयउँ भजन जनत्राता॥
जहँ जहँ बिपिन मुनीस्वर पावउँ। आश्रम जाइ जाइ सिरु नावउँ॥ ५॥

जब पिता-माता कालवश हो गये (मर गये), तब मैं भक्तोंकी रक्षा करनेवाले श्रीरामजीका भजन करनेके लिये वनमें चला गया। वनमें जहाँ-जहाँ मुनीश्वरोंके आश्रम पाता, वहाँ-वहाँ जा-जाकर उन्हें सिर नवाता॥ ५॥

बूझउँ तिन्हहि राम गुन गाहा। कहहिं सुनउँ हरषित खगनाहा॥
सुनत फिरउँ हरि गुन अनुबादा। अब्याहत गति संभु प्रसादा॥ ६॥

हे गरुड़जी! उनसे मैं श्रीरामजीके गुणोंकी कथाएँ पूछता। वे कहते और मैं हर्षित होकर सुनता। इस प्रकार मैं सदा-सर्वदा श्रीहरिके गुणानुवाद सुनता फिरता। शिवजीकी कृपासे मेरी सर्वत्र अबाधित गति थी (अर्थात् मैं जहाँ चाहता वहीं जा सकता था)॥ ६॥

छूटी त्रिबिधि ईषना गाढ़ी। एक लालसा उर अति बाढ़ी॥
राम चरन बारिज जब देखौं। तब निज जन्म सफल करि लेखौं॥ ७॥

मेरी तीनों प्रकारकी (पुत्रकी, धनकी और मानकी) गहरी प्रबल वासनाएँ छूट गयीं और हृदयमें एक यही लालसा अत्यन्त बढ़ गयी कि जब श्रीरामजीके चरणकमलोंके दर्शन करूँ तब अपना जन्म सफल हुआ समझूँ॥ ७॥

जेहि पूँछउँ सोइ मुनि अस कहई। ईस्वर सर्ब भूतमय अहई॥
निर्गुन मत नहिं मोहि सोहाई। सगुन ब्रह्म रति उर अधिकाई॥ ८॥

जिनसे मैं पूछता, वे ही मुनि ऐसा कहते कि ईश्वर सर्वभूतमय है। यह निर्गुण मत मुझे नहीं सुहाता था। हृदयमें सगुण ब्रह्मपर प्रीति बढ़ रही थी॥ ८॥

दो०—गुर के बचन सुरति करि राम चरन मनु लाग।
रघुपति जस गावत फिरउँ छन छन नव अनुराग॥ ११० (क)॥

गुरुजीके वचनोंका स्मरण करके मेरा मन श्रीरामजीके चरणोंमें लग गया। मैं क्षण-क्षण नया-नया प्रेम प्राप्त करता हुआ श्रीरघुनाथजीका यश गाता फिरता था॥ ११० (क)॥

मेरु सिखर बट छायाँ मुनि लोमस आसीन।
देखि चरन सिरु नायउँ बचन कहेउँ अति दीन॥ ११० (ख)॥

सुमेरुपर्वतके शिखरपर बड़की छायामें लोमश मुनि बैठे थे। उन्हें देखकर मैंने उनके चरणोंमें सिर नवाया और अत्यन्त दीन वचन कहे॥ ११० (ख)॥

सुनि मम बचन बिनीत मृदु मुनि कृपाल खगराज।
मोहि सादर पूँछत भए द्विज आयहु केहि काज॥ ११० (ग)॥

हे पक्षिराज! मेरे अत्यन्त नम्र और कोमल वचन सुनकर कृपालु मुनि मुझसे आदरके साथ पूछने लगे—हे ब्राह्मण! आप किस कार्यसे यहाँ आये हैं?॥ ११० (ग)॥

तब मैं कहा कृपानिधि तुम्ह सर्बग्य सुजान।
सगुन ब्रह्म अवराधन मोहि कहहु भगवान॥ ११० (घ)॥

तब मैंने कहा—हे कृपानिधि! आप सर्वज्ञ हैं और सुजान हैं। हे भगवन्! मुझे सगुण ब्रह्मकी आराधना [की प्रक्रिया] कहिये॥ ११० (घ)॥

चौ०—तब मुनीस रघुपति गुन गाथा। कहे कछुक सादर खगनाथा॥
ब्रह्मग्यान रत मुनि बिग्यानी। मोहि परम अधिकारी जानी॥ १॥

तब हे पक्षिराज! मुनीश्वरने श्रीरघुनाथजीके गुणोंकी कुछ कथाएँ आदरसहित कहीं। फिर वे ब्रह्मज्ञान-परायण विज्ञानवान् मुनि मुझे परम अधिकारी जानकर—॥ १॥

लागे करन ब्रह्म उपदेसा। अज अद्वैत अगुन हृदयेसा॥
अकल अनीह अनाम अरूपा। अनुभव गम्य अखंड अनूपा॥ २॥

ब्रह्मका उपदेश करने लगे कि वह अजन्मा है, अद्वैत है, निर्गुण है और हृदयका स्वामी (अन्तर्यामी) है। उसे कोई बुद्धिके द्वारा माप नहीं सकता, वह इच्छारहित, नामरहित, रूपरहित अनुभवसे जाननेयोग्य, अखण्ड और उपमारहित है,॥ २॥

मन गोतीत अमल अबिनासी। निर्बिकार निरवधि सुख रासी॥
सो तैं ताहि तोहि नहिं भेदा। बारि बीचि इव गावहिं बेदा॥ ३॥

वह मन और इन्द्रियोंसे परे, निर्मल, विनाशरहित, निर्विकार, सीमारहित और सुखकी राशि है। वेद ऐसा गाते हैं कि वही तू है (तत्त्वमसि), जल और जलकी लहरकी भाँति उसमें और तुझमें कोई भेद नहीं है॥ ३॥

बिबिधि भाँति मोहि मुनि समुझावा। निर्गुन मत मम हृदयँ न आवा॥
पुनि मैं कहेउँ नाइ पद सीसा। सगुन उपासन कहहु मुनीसा॥ ४॥

मुनिने मुझे अनेकों प्रकारसे समझाया, पर निर्गुण मत मेरे हृदयमें नहीं बैठा। मैंने फिर मुनिके चरणोंमें सिर नवाकर कहा—हे मुनीश्वर! मुझे सगुण ब्रह्मकी उपासना कहिये॥ ४॥

राम भगति जल मम मन मीना। किमि बिलगाइ मुनीस प्रबीना॥
सोइ उपदेस कहहु करि दाया। निज नयनन्हि देखौं रघुराया॥ ५॥

मेरा मन रामभक्तिरूपी जलमें मछली हो रहा है (उसीमें रम रहा है)। हे चतुर मुनीश्वर! ऐसी दशामें वह उससे अलग कैसे हो सकता है? आप दया करके मुझे वही उपदेश (उपाय) कहिये जिससे मैं श्रीरघुनाथजीको अपनी आँखोंसे देख सकूँ॥ ५॥

भरि लोचन बिलोकि अवधेसा। तब सुनिहउँ निर्गुन उपदेसा॥
मुनि पुनि कहि हरिकथा अनूपा। खंडि सगुन मत अगुन निरूपा॥ ६॥

[पहले] नेत्र भरकर श्रीअयोध्यानाथको देखकर, तब निर्गुणका उपदेश सुनूँगा। मुनिने फिर अनुपम हरिकथा कहकर, सगुण मतका खण्डन करके निर्गुणका निरूपण किया॥ ६॥

तब मैं निर्गुन मत कर दूरी। सगुन निरूपउँ करि हठ भूरी॥
उत्तर प्रतिउत्तर मैं कीन्हा। मुनि तन भए क्रोध के चीन्हा॥ ७॥

तब मैं निर्गुण मतको हटाकर (काटकर) बहुत हठ करके सगुणका निरूपण करने लगा। मैंने उत्तर-प्रत्युत्तर किया, इससे मुनिके शरीरमें क्रोधके चिह्न उत्पन्न हो गये॥ ७॥

सुनु प्रभु बहुत अवग्या किएँ। उपज क्रोध ग्यानिन्ह के हिएँ॥
अति संघरषन जौं कर कोई। अनल प्रगट चंदन ते होई॥ ८॥

हे प्रभो! सुनिये, बहुत अपमान करनेपर ज्ञानीके भी हृदयमें क्रोध उत्पन्न हो जाता है। यदि कोई चन्दनकी लकड़ीको बहुत अधिक रगड़े तो उससे भी अग्नि प्रकट हो जायगी॥ ८॥

दो०—बारंबार सकोप मुनि करइ निरूपन ग्यान।
मैं अपने मन बैठ तब करउँ बिबिधि अनुमान॥ १११ (क)॥

मुनि बार-बार क्रोधसहित ज्ञानका निरूपण करने लगे। तब मैं बैठा-बैठा अपने मनमें अनेकों प्रकारके अनुमान करने लगा—॥ १११ (क)॥

क्रोध कि द्वैतबुद्धि बिनु द्वैत कि बिनु अग्यान।
मायाबस परिछिन्न जड़ जीव कि ईस समान॥ १११ (ख)॥

बिना द्वैतबुद्धिके क्रोध कैसा और बिना अज्ञानके क्या द्वैतबुद्धि हो सकती है? मायाके वश रहनेवाला परिच्छिन्न जड़ जीव क्या ईश्वरके समान हो सकता है?॥ १११ (ख)॥

चौ०—कबहुँ कि दुख सब कर हित ताकें। तेहि कि दरिद्र परस मनि जाकें॥
परद्रोही की होहिं निसंका। कामी पुनि कि रहहिं अकलंका॥ १॥

सबका हित चाहनेसे क्या कभी दुःख हो सकता है? जिसके पास पारसमणि है, उसके पास क्या दरिद्रता रह सकती है? दूसरेसे द्रोह करनेवाले क्या निर्भय हो सकते हैं और कामी क्या कलङ्करहित (बेदाग) रह सकते हैं?॥ १॥

बंस कि रह द्विज अनहित कीन्हें। कर्म कि होहिं स्वरूपहि चीन्हें॥
काहू सुमति कि खल सँग जामी। सुभ गति पाव कि परत्रिय गामी॥ २॥

ब्राह्मणका बुरा करनेसे क्या वंश रह सकता है? स्वरूपकी पहिचान (आत्मज्ञान) होनेपर क्या [आसक्तिपूर्वक] कर्म हो सकते हैं? दुष्टोंके संगसे क्या किसीके सुबुद्धि उत्पन्न हुई है? परस्त्रीगामी क्या उत्तम गति पा सकता है?॥ २॥

भव कि परहिं परमात्मा बिंदक। सुखी कि होहिं कबहुँ हरिनिंदक॥
राजु कि रहइ नीति बिनु जानें। अघ कि रहहिं हरिचरित बखानें॥ ३॥

परमात्माको जाननेवाले कहीं जन्म-मरण [के चक्कर] में पड़ सकते हैं? भगवान्‌की निन्दा करनेवाले कभी सुखी हो सकते हैं? नीति बिना जाने क्या राज्य रह सकता है? श्रीहरिके चरित्र वर्णन करनेपर क्या पाप रह सकते हैं?॥ ३॥

पावन जस कि पुन्य बिनु होई। बिनु अघ अजस कि पावइ कोई॥
लाभु कि किछु हरि भगति समाना। जेहि गावहिं श्रुति संत पुराना॥ ४॥

बिना पुण्यके क्या पवित्र यश [प्राप्त] हो सकता है? बिना पापके भी क्या कोई अपयश पा सकता है? जिसकी महिमा वेद, संत और पुराण गाते हैं उस हरिभक्तिके समान क्या कोई दूसरा लाभ भी है?॥ ४॥

हानि कि जग एहि सम किछु भाई। भजिअ न रामहि नर तनु पाई॥
अघ कि पिसुनता सम कछु आना। धर्म कि दया सरिस हरिजाना॥ ५॥

हे भाई! जगत्‌में क्या इसके समान दूसरी भी कोई हानि है कि मनुष्यका शरीर पाकर भी श्रीरामजीका भजन न किया जाय? चुगलखोरीके समान क्या कोई दूसरा पाप है? और हे गरुड़जी! दयाके समान क्या कोई दूसरा धर्म है?॥ ५॥

एहि बिधि अमिति जुगुति मन गुनऊँ। मुनि उपदेस न सादर सुनऊँ॥
पुनि पुनि सगुन पच्छ मैं रोपा। तब मुनि बोलेउ बचन सकोपा॥ ६॥

इस प्रकार मैं अनगिनत युक्तियाँ मनमें विचारता था और आदरके साथ मुनिका उपदेश नहीं सुनता था। जब मैंने बार-बार सगुणका पक्ष स्थापित किया, तब मुनि क्रोधयुक्त वचन बोले— ॥ ६॥

मूढ़ परम सिख देउँ न मानसि। उत्तर प्रतिउत्तर बहु आनसि॥
सत्य बचन बिस्वास न करही। बायस इव सबही ते डरही॥ ७॥

अरे मूढ़! मैं तुझे सर्वोत्तम शिक्षा देता हूँ तो भी तू उसे नहीं मानता और बहुत-से उत्तर-प्रत्युत्तर (दलीलें) लाकर रखता है। मेरे सत्य वचनपर विश्वास नहीं करता! कौएकी भाँति सभीसे डरता है॥ ७॥

सठ स्वपच्छ तव हृदयँ बिसाला। सपदि होहि पच्छी चंडाला॥
लीन्ह श्राप मैं सीस चढ़ाई। नहिं कछु भय न दीनता आई॥ ८॥

वर्णन किया। आदरपूर्वक मुझे यह कथा सुनाकर फिर मुनि मुझसे सुन्दर वाणी बोले— ॥ ५ ॥

रामचरित सर गुप्त सुहावा। संभु प्रसाद तात मैं पावा॥
तोहि निज भगत राम कर जानी। ताते मैं सब कहेउँ बखानी॥ ६॥

हे तात! यह सुन्दर और गुप्त रामचरितमानस मैंने शिवजीकी कृपासे पाया था। तुम्हें श्रीरामजीका 'निज भक्त' जाना, इसीसे मैंने तुमसे सब चरित्र विस्तारके साथ कहा॥ ६॥

राम भगति जिन्ह कें उर नाहीं। कबहुँ न तात कहिअ तिन्ह पाहीं॥
मुनि मोहि बिबिधि भाँति समुझावा। मैं सप्रेम मुनि पद सिरु नावा॥ ७॥

हे तात! जिनके हृदयमें श्रीरामजीकी भक्ति नहीं है, उनके सामने इसे कभी भी नहीं कहना चाहिये। मुनिने मुझे बहुत प्रकारसे समझाया। तब मैंने प्रेमके साथ मुनिके चरणोंमें सिर नवाया॥ ७॥

निज कर कमल परसि मम सीसा। हरषित आसिष दीन्ह मुनीसा॥
राम भगति अबिरल उर तोरें। बसिहि सदा प्रसाद अब मोरें॥ ८॥

मुनीश्वरने अपने कर-कमलोंसे मेरा सिर स्पर्श करके हर्षित होकर आशीर्वाद दिया कि अब मेरी कृपासे तेरे हृदयमें सदा प्रगाढ़ रामभक्ति बसेगी॥ ८॥

दो०—सदा राम प्रिय होहु तुम्ह सुभ गुन भवन अमान।
कामरूप इच्छामरन ग्यान बिराग निधान॥ ११३ (क)॥

तुम सदा श्रीरामजीको प्रिय होओ और कल्याणरूप गुणोंके धाम, मानरहित, इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ, इच्छामृत्यु (जिसकी शरीर छोड़नेकी इच्छा करनेपर ही मृत्यु हो, बिना इच्छाके मृत्यु न हो), एवं ज्ञान और वैराग्यके भण्डार होओ॥ ११३ (क)॥

जेहिं आश्रम तुम्ह बसब पुनि सुमिरत श्रीभगवंत।
ब्यापिहि तहँ न अबिद्या जोजन एक प्रजंत॥ ११३ (ख)॥

इतना ही नहीं, श्रीभगवान्‌को स्मरण करते हुए तुम जिस आश्रममें निवास करोगे वहाँ एक योजन (चार कोस) तक अविद्या (माया-मोह) नहीं व्यापेगी॥ ११३ (ख)॥

चौ०—काल कर्म गुन दोष सुभाऊ। कछु दुख तुम्हहि न ब्यापिहि काऊ॥
राम रहस्य ललित बिधि नाना। गुप्त प्रगट इतिहास पुराना॥ १॥

काल, कर्म, गुण, दोष और स्वभावसे उत्पन्न कुछ भी दुःख तुमको कभी नहीं व्यापेगा। अनेकों प्रकारके सुन्दर श्रीरामजीके रहस्य (गुप्त मर्मके चरित्र और गुण), जो इतिहास और पुराणोंमें गुप्त और प्रकट हैं (वर्णित और लक्षित हैं)॥ १॥

बिनु श्रम तुम्ह जानब सब सोऊ। नित नव नेह राम पद होऊ॥
जो इच्छा करिहहु मन माहीं। हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं॥ २॥

तुम उन सबको भी बिना ही परिश्रम जान जाओगे। श्रीरामजीके चरणोंमें तुम्हारा नित्य नया प्रेम हो। अपने मनमें तुम जो कुछ इच्छा करोगे, श्रीहरिकी कृपासे उसकी पूर्ति कुछ भी दुर्लभ नहीं होगी॥ २॥

सुनि मुनि आसिष सुनु मतिधीरा। ब्रह्मगिरा भइ गगन गँभीरा॥
एवमस्तु तव बच मुनि ग्यानी। यह मम भगत कर्म मन बानी॥ ३॥

हे धीरबुद्धि गरुड़जी! सुनिये, मुनिका आशीर्वाद सुनकर आकाशमें गम्भीर ब्रह्मवाणी हुई कि हे ज्ञानी मुनि! तुम्हारा वचन ऐसा ही (सत्य) हो। यह कर्म, मन और वचनसे मेरा भक्त है॥ ३॥

सुनि नभगिरा हरष मोहि भयऊ। प्रेम मगन सब संसय गयऊ॥
करि बिनती मुनि आयसु पाई। पद सरोज पुनि पुनि सिरु नाई॥ ४॥

आकाशवाणी सुनकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ। मैं प्रेममें मग्न हो गया और मेरा सब सन्देह जाता रहा। तदनन्तर मुनिकी विनती करके, आज्ञा पाकर और उनके चरण-कमलोंमें बार-बार सिर नवाकर—॥ ४॥

हरष सहित एहिं आश्रम आयउँ। प्रभु प्रसाद दुर्लभ बर पायउँ॥
इहाँ बसत मोहि सुनु खग ईसा। बीते कलप सात अरु बीसा॥ ५॥

मैं हर्षसहित इस आश्रममें आया। प्रभु श्रीरामजीकी कृपासे मैंने दुर्लभ वर पा लिया। हे पक्षिराज! मुझे यहाँ निवास करते सत्ताईस कल्प बीत गये॥ ५॥

करउँ सदा रघुपति गुन गाना। सादर सुनहिं बिहंग सुजाना॥
जब जब अवधपुरीं रघुबीरा। धरहिं भगत हित मनुज सरीरा॥ ६॥

मैं यहाँ सदा श्रीरघुनाथजीके गुणोंका गान किया करता हूँ और चतुर पक्षी उसे आदरपूर्वक सुनते हैं। अयोध्यापुरीमें जब-जब श्रीरघुवीर भक्तोंके [हितके] लिये मनुष्यशरीर धारण करते हैं,॥ ६॥

तब तब जाइ राम पुर रहऊँ। सिसुलीला बिलोकि सुख लहऊँ॥
पुनि उर राखि राम सिसुरूपा। निज आश्रम आवउँ खगभूपा॥ ७॥

तब-तब मैं जाकर श्रीरामजीकी नगरीमें रहता हूँ और प्रभुकी शिशुलीला देखकर सुख प्राप्त करता हूँ। फिर हे पक्षिराज! श्रीरामजीके शिशुरूपको हृदयमें रखकर मैं अपने आश्रममें आ जाता हूँ॥ ७॥

कथा सकल मैं तुम्हहि सुनाई। काग देह जेहिं कारन पाई॥
कहिउँ तात सब प्रस्न तुम्हारी। राम भगति महिमा अति भारी॥ ८॥

जिस कारणसे मैंने कौएकी देह पायी, वह सारी कथा आपको सुना दी। हे तात! मैंने आपके सब प्रश्नोंके उत्तर कहे। अहा! रामभक्तिकी बड़ी भारी महिमा है॥ ८॥

दो०—ताते यह तन मोहि प्रिय भयउ राम पद नेह।
निज प्रभु दरसन पायउँ गए सकल संदेह॥ ११४ (क)॥

मुझे अपना यह काकशरीर इसीलिये प्रिय है कि इसमें मुझे श्रीरामजीके चरणोंका प्रेम प्राप्त हुआ। इसी शरीरसे मैंने अपने प्रभुके दर्शन पाये और मेरे सब सन्देह जाते रहे (दूर हुए)॥ ११४ (क)॥

भगति पच्छ हठ करि रहेउँ दीन्हि महारिषि साप।
मुनि दुर्लभ बर पायउँ देखहु भजन प्रताप॥ ११४ (ख)॥

मैं हठ करके भक्तिपक्षपर अड़ा रहा, जिससे महर्षि लोमशने मुझे शाप दिया। परन्तु उसका फल यह हुआ कि जो मुनियोंको भी दुर्लभ है, वह वरदान मैंने पाया। भजनका प्रताप तो देखिये!॥ ११४ (ख)॥

चौ०—जे असि भगति जानि परिहरहीं। केवल ग्यान हेतु श्रम करहीं॥
ते जड़ कामधेनु गृहँ त्यागी। खोजत आकु फिरहिं पय लागी॥ १॥

जो भक्तिकी ऐसी महिमा जानकर भी उसे छोड़ देते हैं और केवल ज्ञानके लिये श्रम (साधन) करते हैं, वे मूर्ख घरपर खड़ी हुई कामधेनुको छोड़कर दूधके लिये मदारके पेड़को खोजते फिरते हैं॥ १॥

सुनु खगेस हरि भगति बिहाई। जे सुख चाहहिं आन उपाई॥
ते सठ महासिंधु बिनु तरनी। पैरि पार चाहहिं जड़ करनी॥ २॥

हे पक्षिराज! सुनिये, जो लोग श्रीहरिकी भक्तिको छोड़कर दूसरे उपायोंसे सुख चाहते हैं, वे मूर्ख और जड करनीवाले (अभागे) बिना ही जहाजके तैरकर महासमुद्रके पार जाना चाहते हैं॥ २॥

सुनि भसुंडि के बचन भवानी। बोलेउ गरुड़ हरषि मृदु बानी॥
तव प्रसाद प्रभु मम उर माहीं। संसय सोक मोह भ्रम नाहीं॥ ३॥

[शिवजी कहते हैं—] हे भवानी! भुशुण्डिके वचन सुनकर गरुड़जी हर्षित होकर कोमल वाणीसे बोले—हे प्रभो! आपके प्रसादसे मेरे हृदयमें अब सन्देह, शोक, मोह और भ्रम कुछ भी नहीं रह गया॥ ३॥

सुनेउँ पुनीत राम गुन ग्रामा। तुम्हरी कृपाँ लहेउँ बिश्रामा॥
एक बात प्रभु पूँछउँ तोही। कहहु बुझाइ कृपानिधि मोही॥ ४॥

मैंने आपकी कृपासे श्रीरामचन्द्रजीके पवित्र गुणसमूहोंको सुना और शान्ति प्राप्त की। हे प्रभो! अब मैं आपसे एक बात और पूछता हूँ। हे कृपासागर! मुझे समझाकर कहिये॥ ४॥

कहहिं संत मुनि बेद पुराना। नहिं कछु दुर्लभ ग्यान समाना॥
सोइ मुनि तुम्ह सन कहेउ गोसाईं। नहिं आदरेहु भगति की नाईं॥ ५॥

संत, मुनि, वेद और पुराण यह कहते हैं कि ज्ञानके समान दुर्लभ कुछ भी नहीं है। हे गोसाईं! वही ज्ञान मुनिने आपसे कहा, परन्तु आपने भक्तिके समान उसका आदर नहीं किया॥ ५॥

ग्यानहि भगतिहि अंतर केता। सकल कहहु प्रभु कृपा निकेता॥
सुनि उरगारि बचन सुख माना। सादर बोलेउ काग सुजाना॥ ६॥

हे कृपाके धाम! हे प्रभो! ज्ञान और भक्तिमें कितना अन्तर है? यह सब मुझसे कहिये। गरुड़जीके वचन सुनकर सुजान काकभुशुण्डिजीने सुख माना और आदरके साथ कहा—॥ ६॥

भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा॥
नाथ मुनीस कहहिं कछु अंतर। सावधान सोउ सुनु बिहंगबर॥ ७॥

भक्ति और ज्ञानमें कुछ भी भेद नहीं है। दोनों ही संसारसे उत्पन्न क्लेशोंको हर लेते हैं। हे नाथ! मुनीश्वर इनमें कुछ अन्तर बतलाते हैं। हे पक्षिश्रेष्ठ! उसे सावधान होकर सुनिये॥ ७॥

ग्यान बिराग जोग बिग्याना। ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना॥
पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती। अबला अबल सहज जड़ जाती॥ ८॥

हे हरिवाहन! सुनिये, ज्ञान, वैराग्य, योग, विज्ञान—ये सब पुरुष हैं। पुरुषका प्रताप सब प्रकारसे प्रबल होता है। अबला (माया) स्वाभाविक ही निर्बल और जाति (जन्म) से ही जड़ (मूर्ख) होती है॥ ८॥

दो०—पुरुष त्यागि सक नारिहि जो बिरक्त मति धीर।
न तु कामी बिषयाबस बिमुख जो पद रघुबीर॥ ११५ (क)॥

परन्तु जो वैराग्यवान् और धीरबुद्धि पुरुष हैं वही स्त्रीको त्याग सकते हैं, न कि वे कामी पुरुष, जो विषयोंके वशमें हैं (उनके गुलाम हैं) और श्रीरघुवीरके चरणोंसे विमुख हैं॥ ११५ (क)॥

सो०—सोउ मुनि ग्याननिधान मृगनयनी बिधु मुख निरखि।
बिबस होइ हरिजान नारि बिष्नु माया प्रगट॥ ११५ (ख)॥

वे ज्ञानके भण्डार मुनि भी मृगनयनी (युवती स्त्री) के चन्द्रमुखको देखकर विवश (उसके अधीन) हो जाते हैं। हे गरुड़जी! साक्षात् भगवान् विष्णुकी माया ही स्त्रीरूपसे प्रकट है॥ ११५ (ख)॥

चौ०—इहाँ न पच्छपात कछु राखउँ। बेद पुरान संत मत भाषउँ॥
मोह न नारि नारि कें रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा॥ १॥

यहाँ मैं कुछ पक्षपात नहीं रखता। वेद, पुराण और संतोंका मत (सिद्धान्त) ही कहता हूँ। हे गरुड़जी! यह अनुपम (विलक्षण) रीति है कि एक स्त्रीके रूपपर दूसरी स्त्री मोहित नहीं होती॥ १॥

माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ। नारि बर्ग जानइ सब कोऊ॥
पुनि रघुबीरहि भगति पिआरी। माया खलु नर्तकी बिचारी॥ २॥

आप सुनिये, माया और भक्ति—ये दोनों ही स्त्रीवर्गकी हैं, यह सब कोई जानते हैं। फिर श्रीरघुवीरको भक्ति प्यारी है। माया बेचारी तो निश्चय ही नाचनेवाली (नटिनीमात्र) है॥ २॥

भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया॥
राम भगति निरुपम निरुपाधी। बसइ जासु उर सदा अबाधी॥ ३॥

श्रीरघुनाथजी भक्तिके विशेष अनुकूल रहते हैं। इसीसे माया उससे अत्यन्त डरती रहती है। जिसके हृदयमें उपमारहित और उपाधिरहित (विशुद्ध) रामभक्ति सदा बिना किसी बाधा (रोक-टोक) के बसती है;॥ ३॥

तेहि बिलोकि माया सकुचाई। करि न सकइ कछु निज प्रभुताई॥
अस बिचारि जे मुनि बिग्यानी। जाचहिं भगति सकल सुख खानी॥ ४॥

उसे देखकर माया सकुचा जाती है। उसपर वह अपनी प्रभुता कुछ भी नहीं कर (चला) सकती। ऐसा विचारकर ही जो विज्ञानी मुनि हैं, वे भी सब सुखोंकी खानि भक्तिकी ही याचना करते हैं॥ ४॥

दो०—यह रहस्य रघुनाथ कर बेगि न जानइ कोइ।
जो जानइ रघुपति कृपाँ सपनेहुँ मोह न होइ॥११६ (क)॥

श्रीरघुनाथजीका यह रहस्य (गुप्त मर्म) जल्दी कोई भी नहीं जान पाता। श्रीरघुनाथजीकी कृपासे जो इसे जान जाता है, उसे स्वप्नमें भी मोह नहीं होता॥ ११६ (क)॥

औरउ ग्यान भगति कर भेद सुनहु सुप्रबीन।
जो सुनि होइ राम पद प्रीति सदा अबिछीन॥११६ (ख)॥

हे सुचतुर गरुड़जी! ज्ञान और भक्तिका और भी भेद सुनिये, जिसके सुननेसे श्रीरामजीके चरणोंमें सदा अविच्छिन्न (एकतार) प्रेम हो जाता है॥ ११६ (ख)॥

चौ०—सुनहु तात यह अकथ कहानी। समुझत बनइ न जाइ बखानी॥
ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥ १॥

हे तात! यह अकथनीय कहानी (वार्ता) सुनिये। यह समझते ही बनती है, कही नहीं जा सकती। जीव ईश्वरका अंश है। [अतएव] वह अविनाशी, चेतन, निर्मल और स्वभावसे ही सुखकी राशि है॥ १॥

सो मायाबस भयउ गोसाईं। बँध्यो कीर मरकट की नाईं॥
जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई॥ २॥

हे गोसाईं! वह मायाके वशीभूत होकर तोते और वानरकी भाँति अपने-आप ही बँध गया। इस प्रकार जड़ और चेतनमें ग्रन्थि (गाँठ) पड़ गयी। यद्यपि वह ग्रन्थि मिथ्या ही है, तथापि उसके छूटनेमें कठिनता है॥ २॥

तब ते जीव भयउ संसारी। छूट न ग्रंथि न होइ सुखारी॥
श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई। छूट न अधिक अधिक अरुझाई॥ ३॥

तभीसे जीव संसारी (जन्मने-मरनेवाला) हो गया। अब न तो गाँठ छूटती है और न वह सुखी होता है। वेदों और पुराणोंने बहुत-से उपाय बतलाये हैं, पर वह (ग्रन्थि) छूटती नहीं, वरं अधिकाधिक उलझती ही जाती है॥ ३॥

जीव हृदयँ तम मोह बिसेषी। ग्रंथि छूट किमि परइ न देखी॥
अस संजोग ईस जब करई। तबहुँ कदाचित सो निरुअरई॥ ४॥

जीवके हृदयमें अज्ञानरूपी अन्धकार विशेषरूपसे छा रहा है, इससे गाँठ देख ही नहीं पड़ती, छूटे तो कैसे? जब कभी ईश्वर ऐसा संयोग (जैसा आगे कहा जाता है) उपस्थित कर देते हैं, तब भी कदाचित् ही वह (ग्रन्थि) छूट पाती है॥ ४॥

सात्त्विक श्रद्धा धेनु सुहाई। जौं हरिकृपाँ हृदयँ बस आई॥
जप तप ब्रत जम नियम अपारा। जे श्रुति कह सुभ धर्म अचारा॥ ५॥

श्रीहरिकी कृपासे यदि सात्त्विकी श्रद्धारूपी सुन्दर गौ हृदयरूपी घरमें आकर बस जाय; असंख्यों जप, तप, व्रत, यम और नियमादि शुभ धर्म और आचार (आचरण)

जो श्रुतियोंने कहे हैं,॥ ५॥

तेइ तृन हरित चरै जब गाई। भाव बच्छ सिसु पाइ पेन्हाई॥
नोइ निबृत्ति पात्र बिस्वासा। निर्मल मन अहीर निज दासा॥ ६॥

उन्हीं [धर्माचाररूपी] हरे तृणों (घास) को जब वह गौ चरे और आस्तिक भावरूपी छोटे बछड़ेको पाकर वह पेन्हावे। निवृत्ति (सांसारिक विषयोंसे और प्रपञ्चसे हटना) नोई (गौके दूहते समय पिछले पैर बाँधनेकी रस्सी) है; विश्वास [दूध दूहनेका] बरतन है, निर्मल (निष्पाप) मन जो स्वयं अपना दास है (अपने वशमें है), दुहनेवाला अहीर है॥ ६॥

परम धर्ममय पय दुहि भाई। अवटै अनल अकाम बनाई॥
तोष मरुत तब छमाँ जुड़ावै। धृति सम जावनु देइ जमावै॥ ७॥

हे भाई! इस प्रकार (धर्माचारमें प्रवृत्त सात्त्विकी श्रद्धारूपी गौसे भाव, निवृत्ति और वशमें किये हुए निर्मल मनकी सहायतासे) परम धर्ममय दूध दुहकर उसे निष्काम भावरूपी अग्निपर भलीभाँति औंटावे। फिर क्षमा और सन्तोषरूपी हवासे उसे ठंढा करे और धैर्य तथा शम (मनका निग्रह) रूपी जामन देकर उसे जमावे॥ ७॥

मुदिताँ मथै बिचार मथानी। दम अधार रजु सत्य सुबानी॥
तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता। बिमल बिराग सुभग सुपुनीता॥ ८॥

तब मुदिता (प्रसन्नता) रूपी कमोरीमें तत्त्वविचाररूपी मथानीसे दम (इन्द्रियदमन) के आधारपर (दमरूपी खम्भे आदिके सहारे) सत्य और सुन्दर वाणीरूपी रस्सी लगाकर उसे मथे और मथकर तब उसमेंसे निर्मल, सुन्दर और अत्यन्त पवित्र वैराग्यरूपी मक्खन निकाल ले॥ ८॥

दो०—जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ॥ ११७ (क)॥

तब योगरूपी अग्नि प्रकट करके उसमें समस्त शुभाशुभ कर्मरूपी ईंधन लगा दे (सब कर्मोंको योगरूपी अग्निमें भस्म कर दे)। जब [वैराग्यरूपी मक्खनका] ममतारूपी मल जल जाय, तब [बचे हुए] ज्ञानरूपी घीको [निश्चयात्मिका] बुद्धिसे ठंढा करे॥ ११७ (क)॥

तब बिग्यानरूपिनी बुद्धि बिषद घृत पाइ।
चित्त दिआ भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ॥ ११७ (ख)॥

तब विज्ञानरूपिणी बुद्धि उस [ज्ञानरूपी] निर्मल घीको पाकर उससे चित्तरूपी दियेको भरकर, समताकी दीवट बनाकर, उसपर उसे दृढ़तापूर्वक (जमाकर) रखे॥ ११७ (ख)॥

तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास तें काढ़ि।
तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि॥ ११७ (ग)॥

[जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति] तीनों अवस्थाएँ और [सत्त्व, रज और तम] तीनों गुणरूपी कपाससे तुरीयावस्थारूपी रूईको निकालकर और फिर उसे सँवारकर उसकी

सुन्दर कड़ी बत्ती बनावे॥ ११७ (ग)॥

सो०—एहि बिधि लेसै दीप तेज रासि बिग्यानमय।
जातहिं जासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब॥ ११७ (घ)॥

इस प्रकार तेजकी राशि विज्ञानमय दीपकको जलावे, जिसके समीप जाते ही मद आदि सब पतंगे जल जायँ॥ ११७ (घ)॥

चौ०—सोहमस्मि इति बृत्ति अखंडा। दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा॥
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भव मूल भेद भ्रम नासा॥ १॥

'सोऽहमस्मि' (वह ब्रह्म मैं हूँ) यह जो अखण्ड (तैलधारावत् कभी न टूटनेवाली) वृत्ति है, वही [उस ज्ञानदीपककी] परम प्रचण्ड दीपशिखा (लौ) है। [इस प्रकार] जब आत्मानुभवके सुखका सुन्दर प्रकाश फैलता है, तब संसारके मूल भेदरूपी भ्रमका नाश हो जाता है,॥ १॥

प्रबल अबिद्या कर परिवारा। मोह आदि तम मिटइ अपारा॥
तब सोइ बुद्धि पाइ उँजिआरा। उर गृहँ बैठि ग्रंथि निरुआरा॥ २॥

और महान् बलवती अविद्याके परिवार मोह आदिका अपार अन्धकार मिट जाता है। तब वही (विज्ञानरूपिणी) बुद्धि [आत्मानुभवरूप] प्रकाशको पाकर हृदयरूपी घरमें बैठकर उस जड़-चेतनकी गाँठको खोलती है॥ २॥

छोरन ग्रंथि पाव जौं सोई। तब यह जीव कृतारथ होई॥
छोरत ग्रंथि जानि खगराया। बिघ्न अनेक करइ तब माया॥ ३॥

यदि वह (विज्ञानरूपिणी बुद्धि) उस गाँठको खोलने पावे, तब यह जीव कृतार्थ हो। परन्तु हे पक्षिराज गरुड़जी! गाँठ खोलते हुए जानकर माया फिर अनेकों विघ्न करती है॥ ३॥

रिद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई। बुद्धिहि लोभ दिखावहिं आई॥
कल बल छल करि जाहिं समीपा। अंचल बात बुझावहिं दीपा॥ ४॥

हे भाई! वह बहुत-सी ऋद्धि-सिद्धियोंको भेजती है, जो आकर बुद्धिको लोभ दिखाती हैं। और वे ऋद्धि-सिद्धियाँ कल (कला), बल और छल करके समीप जातीं और आँचलकी वायुसे उस ज्ञानरूपी दीपकको बुझा देती हैं॥ ४॥

होइ बुद्धि जौं परम सयानी। तिन्ह तन चितव न अनहित जानी॥
जौं तेहि बिघ्न बुद्धि नहिं बाधी। तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी॥ ५॥

यदि बुद्धि बहुत ही सयानी हुई, तो वह उन (ऋद्धि-सिद्धियों) को अहितकर (हानिकर) समझकर उनकी ओर ताकती नहीं। इस प्रकार यदि मायाके विघ्नोंसे बुद्धिको बाधा न हुई, तो फिर देवता उपाधि (विघ्न) करते हैं॥ ५॥

इंद्री द्वार झरोखा नाना। तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना॥
आवत देखहिं बिषय बयारी। ते हठि देहिं कपाट उघारी॥ ६॥

इन्द्रियोंके द्वार हृदयरूपी घरके अनेकों झरोखे हैं। वहाँ-वहाँ (प्रत्येक झरोखेपर) देवता थाना किये (अड्डा जमाकर) बैठे हैं। ज्यों ही वे विषयरूपी हवाको आते देखते

हैं, त्यों ही हठपूर्वक किवाड़ खोल देते हैं॥ ६॥

जब सो प्रभंजन उर गृहँ जाई। तबहिं दीप बिग्यान बुझाई॥
ग्रंथि न छूटि मिटा सो प्रकासा। बुद्धि बिकल भइ बिषय बतासा॥७॥

ज्यों ही वह तेज हवा हृदयरूपी घरमें जाती है, त्यों ही वह विज्ञानरूपी दीपक बुझ जाता है। गाँठ भी नहीं छूटी और वह (आत्मानुभवरूप) प्रकाश भी मिट गया। विषयरूपी हवासे बुद्धि व्याकुल हो गयी (सारा किया-कराया चौपट हो गया)॥ ७॥

इंद्रिन्ह सुरन्ह न ग्यान सोहाई। बिषय भोग पर प्रीति सदाई॥
बिषय समीर बुद्धि कृत भोरी। तेहि बिधि दीप को बार बहोरी॥८॥

इन्द्रियों और उनके देवताओंको ज्ञान [स्वाभाविक ही] नहीं सुहाता। क्योंकि उनकी विषय-भोगोंमें सदा ही प्रीति रहती है और बुद्धिको भी विषयरूपी हवाने बावली बना दिया। तब फिर (दुबारा) उस ज्ञानदीपकको उसी प्रकारसे कौन जलावे?॥ ८॥

दो०—तब फिरि जीव बिबिधि बिधि पावइ संसृति क्लेस।
हरि माया अति दुस्तर तरि न जाइ बिहगेस॥ ११८ (क)॥

[इस प्रकार ज्ञानदीपकके बुझ जानेपर] तब फिर जीव अनेकों प्रकारसे संसृति (जन्म-मरणादि) के क्लेश पाता है। हे पक्षिराज! हरिकी माया अत्यन्त दुस्तर है, वह सहजहीमें तरी नहीं जा सकती॥ ११८ (क)॥

कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन बिबेक।
होइ घुनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक॥ ११८ (ख)॥

ज्ञान कहने (समझाने) में कठिन, समझनेमें कठिन और साधनेमें भी कठिन है। यदि घुणाक्षरन्यायसे (संयोगवश) कदाचित् यह ज्ञान हो भी जाय, तो फिर [उसे बचाये रखनेमें] अनेकों विघ्न हैं॥ ११८ (ख)॥

चौ०—ग्यान पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहिं बारा॥
जो निर्बिघ्न पंथ निर्बहई। सो कैवल्य परम पद लहई॥१॥

ज्ञानका मार्ग कृपाण (दुधारी तलवार) की धारके समान है। हे पक्षिराज! इस मार्गसे गिरते देर नहीं लगती। जो इस मार्गको निर्विघ्न निबाह ले जाता है, वही कैवल्य (मोक्ष) रूप परमपदको प्राप्त करता है॥ १॥

अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम बद॥
राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआईं॥२॥

संत, पुराण, वेद और [तन्त्र आदि] शास्त्र [सब] यह कहते हैं कि कैवल्यरूप परमपद अत्यन्त दुर्लभ है; किन्तु हे गोसाईं! वही [अत्यन्त दुर्लभ] मुक्ति श्रीरामजीको भजनेसे बिना इच्छा किये भी जबरदस्ती आ जाती है॥ २॥

जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करै उपाई॥
तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई। रहि न सकइ हरि भगति बिहाई॥३॥

जैसे स्थलके बिना जल नहीं रह सकता, चाहे कोई करोड़ों प्रकारके उपाय क्यों

न करे। वैसे ही, हे पक्षिराज! सुनिये, मोक्षसुख भी श्रीहरिकी भक्तिको छोड़कर नहीं रह सकता॥ ३॥

अस बिचारि हरि भगत सयाने। मुक्ति निरादर भगति लुभाने॥
भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अबिद्या नासा॥ ४॥

ऐसा विचारकर बुद्धिमान् हरिभक्त भक्तिपर लुभाये रहकर मुक्तिका तिरस्कार कर देते हैं। भक्ति करनेसे संसृति (जन्म-मृत्युरूप संसार) की जड़ अविद्या बिना ही यत्न और परिश्रमके (अपने-आप) वैसे ही नष्ट हो जाती है,॥ ४॥

भोजन करिअ तृपिति हित लागी। जिमि सो असन पचवै जठरागी॥
असि हरि भगति सुगम सुखदाई। को अस मूढ़ न जाहि सोहाई॥ ५॥

जैसे भोजन किया तो जाता है तृप्तिके लिये और उस भोजनको जठराग्नि अपने-आप (बिना हमारी चेष्टाके) पचा डालती है, ऐसी सुगम और परम सुख देनेवाली हरिभक्ति जिसे न सुहावे, ऐसा मूढ़ कौन होगा?॥ ५॥

दो०—सेवक सेब्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत बिचारि॥ ११९ (क)॥

हे सर्पोंके शत्रु गरुड़जी! मैं सेवक हूँ और भगवान् मेरे सेव्य (स्वामी) हैं, इस भावके बिना संसाररूपी समुद्रसे तरना नहीं हो सकता। ऐसा सिद्धान्त विचारकर श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंका भजन कीजिये॥ ११९ (क)॥

जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायकहि भजहिं जीव ते धन्य॥ ११९ (ख)॥

जो चेतनको जड कर देता है और जडको चेतन कर देता है, ऐसे समर्थ श्रीरघुनाथजीको जो जीव भजते हैं, वे धन्य हैं॥ ११९ (ख)॥

चौ०—कहेउँ ग्यान सिद्धांत बुझाई। सुनहु भगति मनि कै प्रभुताई॥
राम भगति चिंतामनि सुंदर। बसइ गरुड़ जाके उर अंतर॥ १॥

मैंने ज्ञानका सिद्धान्त समझाकर कहा। अब भक्तिरूपी मणिकी प्रभुता (महिमा) सुनिये। श्रीरामजीकी भक्ति सुन्दर चिन्तामणि है। हे गरुड़जी! यह जिसके हृदयके अंदर बसती है,॥ १॥

परम प्रकास रूप दिन राती। नहिं कछु चहिअ दिआ घृत बाती॥
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ बात नहिं ताहि बुझावा॥ २॥

वह दिन-रात [अपने-आप ही] परम प्रकाशरूप रहता है। उसको दीपक, घी और बत्ती कुछ भी नहीं चाहिये। [इस प्रकार मणिका एक तो स्वाभाविक प्रकाश रहता है] फिर मोहरूपी दरिद्रता समीप नहीं आती [क्योंकि मणि स्वयं धनरूप है]; और [तीसरे] लोभरूपी हवा उस मणिमय दीपको बुझा नहीं सकती [क्योंकि मणि स्वयं प्रकाशरूप है, वह किसी दूसरेकी सहायतासे नहीं प्रकाश करती]॥ २॥

प्रबल अबिद्या तम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ समुदाई॥
खल कामादि निकट नहिं जाहीं। बसइ भगति जाके उर माहीं॥ ३॥

[उसके प्रकाशसे] अविद्याका प्रबल अन्धकार मिट जाता है। मदादि पतंगोंका सारा समूह हार जाता है। जिसके हृदयमें भक्ति बसती है, काम, क्रोध और लोभ आदि दुष्ट तो उसके पास भी नहीं जाते॥ ३॥

गरल सुधासम अरि हित होई। तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई॥
ब्यापहिं मानस रोग न भारी। जिन्ह के बस सब जीव दुखारी॥४॥

उसके लिये विष अमृतके समान और शत्रु मित्र हो जाता है। उस मणिके बिना कोई सुख नहीं पाता। बड़े-बड़े मानस-रोग, जिनके वश होकर सब जीव दुःखी हो रहे हैं, उसको नहीं व्यापते॥ ४॥

राम भगति मनि उर बस जाकें। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताकें॥
चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं। जे मनि लागि सुजतन कराहीं॥५॥

श्रीरामभक्तिरूपी मणि जिसके हृदयमें बसती है, उसे स्वप्नमें भी लेशमात्र दुःख नहीं होता। जगत्में वे ही मनुष्य चतुरोंके शिरोमणि हैं जो उस भक्तिरूपी मणिके लिये भलीभाँति यत्न करते हैं॥ ५॥

सो मनि जदपि प्रगट जग अहई। राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई॥
सुगम उपाय पाइबे केरे। नर हतभाग्य देहिं भटभेरे॥६॥

यद्यपि वह मणि जगत्में प्रकट (प्रत्यक्ष) है, पर बिना श्रीरामजीकी कृपाके उसे कोई पा नहीं सकता। उसके पानेके उपाय भी सुगम ही हैं, पर अभागे मनुष्य उन्हें ठुकरा देते हैं॥ ६॥

पावन पर्बत बेद पुराना। राम कथा रुचिराकर नाना॥
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ग्यान बिराग नयन उरगारी॥७॥

वेद-पुराण पवित्र पर्वत हैं। श्रीरामजीकी नाना प्रकारकी कथाएँ उन पर्वतोंमें सुन्दर खानें हैं। संत पुरुष [उनकी इन खानोंके रहस्यको जाननेवाले] मर्मी हैं और सुन्दर बुद्धि [खोदनेवाली] कुदाल है। हे गरुड़जी! ज्ञान और वैराग्य—ये दो उनके नेत्र हैं॥ ७॥

भाव सहित खोजइ जो प्रानी। पाव भगति मनि सब सुख खानी॥
मोरें मन प्रभु अस बिस्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा॥८॥

जो प्राणी उसे प्रेमके साथ खोजता है, वह सब सुखोंकी खान इस भक्तिरूपी मणिको पा जाता है। हे प्रभो! मेरे मनमें तो ऐसा विश्वास है कि श्रीरामजीके दास श्रीरामजीसे भी बढ़कर हैं॥ ८॥

राम सिंधु घन सज्जन धीरा। चंदन तरु हरि संत समीरा॥
सब कर फल हरि भगति सुहाई। सो बिनु संत न काहूँ पाई॥९॥

श्रीरामचन्द्रजी समुद्र हैं तो धीर संत पुरुष मेघ हैं। श्रीहरि चन्दनके वृक्ष हैं तो संत पवन हैं। सब साधनोंका फल सुन्दर हरिभक्ति ही है। उसे संतके बिना किसीने नहीं पाया॥ ९॥

अस बिचारि जोइ कर सतसंगा। राम भगति तेहि सुलभ बिहंगा॥ १०॥

ऐसा विचारकर जो भी संतोंका संग करता है, हे गरुड़जी! उसके लिये श्रीरामजीकी भक्ति सुलभ हो जाती है॥ १०॥

दो०—ब्रह्म पयोनिधि मंदर ग्यान संत सुर आहिं।
कथासुधा मथि काढ़हिं भगति मधुरता जाहिं॥ १२० (क)॥

ब्रह्म (वेद) समुद्र है, ज्ञान मन्दराचल है और संत देवता हैं, जो उस समुद्रको मथकर कथारूपी अमृत निकालते हैं, जिसमें भक्तिरूपी मधुरता बसी रहती है॥ १२० (क)॥

बिरति चर्म असि ग्यान मद लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइअ सो हरि भगति देखु खगेस बिचारि॥ १२० (ख)॥

वैराग्यरूपी ढालसे अपनेको बचाते हुए और ज्ञानरूपी तलवारसे मद, लोभ और मोहरूपी वैरियोंको मारकर जो विजय प्राप्त करती है, वह हरिभक्ति ही है; हे पक्षिराज! इसे विचारकर देखिये॥ १२० (ख)॥

चौ०—पुनि सप्रेम बोलेउ खगराऊ। जौं कृपाल मोहि ऊपर भाऊ॥
नाथ मोहि निज सेवक जानी। सप्त प्रस्न मम कहहु बखानी॥ १॥

पक्षिराज गरुड़जी फिर प्रेमसहित बोले—हे कृपालु! यदि मुझपर आपका प्रेम है तो हे नाथ! मुझे अपना सेवक जानकर मेरे सात प्रश्नोंके उत्तर बखानकर कहिये॥ १॥

प्रथमहिं कहहु नाथ मतिधीरा। सब ते दुर्लभ कवन सरीरा॥
बड़ दुख कवन कवन सुख भारी। सोउ संछेपहिं कहहु बिचारी॥ २॥

हे नाथ! हे धीरबुद्धि! पहले तो यह बताइये कि सबसे दुर्लभ कौन-सा शरीर है? फिर सबसे बड़ा दुःख कौन है और सबसे बड़ा सुख कौन है, यह भी विचारकर संक्षेपमें ही कहिये॥ २॥

संत असंत मरम तुम्ह जानहु। तिन्ह कर सहज सुभाव बखानहु॥
कवन पुन्य श्रुति बिदित बिसाला। कहहु कवन अघ परम कराला॥ ३॥

संत और असंतका मर्म (भेद) आप जानते हैं। उनके सहज स्वभावका वर्णन कीजिये। फिर कहिये कि श्रुतियोंमें प्रसिद्ध सबसे महान् पुण्य कौन-सा है और सबसे महान् भयंकर पाप कौन है॥ ३॥

मानस रोग कहहु समुझाई। तुम्ह सर्बग्य कृपा अधिकाई॥
तात सुनहु सादर अति प्रीती। मैं संछेप कहउँ यह नीती॥ ४॥

फिर मानस-रोगोंको समझाकर कहिये। आप सर्वज्ञ हैं और मुझपर आपकी कृपा भी बहुत है। [काकभुशुण्डिजीने कहा—] हे तात! अत्यन्त आदर और प्रेमके साथ सुनिये। मैं यह नीति संक्षेपसे कहता हूँ॥ ४॥

नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही॥
नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी। ग्यान बिराग भगति सुभ देनी॥ ५॥

मनुष्यशरीरके समान कोई शरीर नहीं है। चर-अचर सभी जीव उसकी याचना

करते हैं। यह मनुष्यशरीर नरक, स्वर्ग और मोक्षकी सीढ़ी है तथा कल्याणकारी ज्ञान, वैराग्य और भक्तिको देनेवाला है॥ ५॥

सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर। होहिं बिषय रत मंद मंद तर॥
काँच किरिच बदलें ते लेहीं। कर ते डारि परसमनि देहीं॥ ६॥

ऐसे मनुष्यशरीरको धारण (प्राप्त) करके भी जो लोग श्रीहरिका भजन नहीं करते और नीचसे भी नीच विषयोंमें अनुरक्त रहते हैं, वे पारसमणिको हाथसे फेंक देते हैं और बदलेमें काँचके टुकड़े ले लेते हैं॥ ६॥

नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं। संत मिलन सम सुख जग नाहीं॥
पर उपकार बचन मन काया। संत सहज सुभाउ खगराया॥ ७॥

जगत्‌में दरिद्रताके समान दुःख नहीं है तथा संतोंके मिलनके समान जगत्‌में सुख नहीं है। और हे पक्षिराज! मन, वचन और शरीरसे परोपकार करना, यह संतोंका सहज स्वभाव है॥ ७॥

संत सहहिं दुख पर हित लागी। पर दुख हेतु असंत अभागी॥
भूर्ज तरू सम संत कृपाला। पर हित निति सह बिपति बिसाला॥ ८॥

संत दूसरोंकी भलाईके लिये दुःख सहते हैं और अभागे असंत दूसरोंको दुःख पहुँचानेके लिये। कृपालु संत भोजके वृक्षके समान दूसरोंके हितके लिये भारी विपत्ति सहते हैं (अपनी खालतक उधड़वा लेते हैं)॥ ८॥

सन इव खल पर बंधन करई। खाल कढ़ाइ बिपति सहि मरई॥
खल बिनु स्वारथ पर अपकारी। अहि मूषक इव सुनु उरगारी॥ ९॥

किन्तु दुष्ट लोग सनकी भाँति दूसरोंको बाँधते हैं और [उन्हें बाँधनेके लिये] अपनी खाल खिचवाकर विपत्ति सहकर मर जाते हैं। हे सर्पोंके शत्रु गरुड़जी! सुनिये, दुष्ट बिना किसी स्वार्थके साँप और चूहेके समान अकारण ही दूसरोंका अपकार करते हैं॥ ९॥

पर संपदा बिनासि नसाहीं। जिमि ससि हति हिम उपल बिलाहीं॥
दुष्ट उदय जग आरति हेतू। जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू॥ १०॥

वे परायी सम्पत्तिका नाश करके स्वयं नष्ट हो जाते हैं, जैसे खेतीका नाश करके ओले नष्ट हो जाते हैं। दुष्टका अभ्युदय (उन्नति) प्रसिद्ध अधम ग्रह केतुके उदयकी भाँति जगत्‌के दुःखके लिये ही होता है॥ १०॥

संत उदय संतत सुखकारी। बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी॥
परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा। पर निंदा सम अघ न गरीसा॥ ११॥

और संतोंका अभ्युदय सदा ही सुखकर होता है, जैसे चन्द्रमा और सूर्यका उदय विश्वभरके लिये सुखदायक है। वेदोंमें अहिंसाको परम धर्म माना है और परनिन्दाके समान भारी पाप नहीं है॥ ११॥

हर गुर निंदक दादुर होई। जन्म सहस्र पाव तन सोई॥
द्विज निंदक बहु नरक भोग करि। जग जनमइ बायस सरीर धरि॥ १२॥

शङ्करजी और गुरुकी निन्दा करनेवाला मनुष्य (अगले जन्ममें) मेढक होता है और वह हजार जन्मतक वही मेढकका शरीर पाता है। ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेवाला व्यक्ति बहुत-से नरक भोगकर फिर जगत्में कौएका शरीर धारण करके जन्म लेता है॥ १२॥

सुर श्रुति निंदक जे अभिमानी। रौरव नरक परहिं ते प्रानी॥
होहिं उलूक संत निंदा रत। मोह निसा प्रिय ग्यान भानु गत॥ १३॥

जो अभिमानी जीव देवताओं और वेदोंकी निन्दा करते हैं, वे रौरव नरकमें पड़ते हैं। संतोंकी निन्दामें लगे हुए लोग उल्लू होते हैं, जिन्हें मोहरूपी रात्रि प्रिय होती है और ज्ञानरूपी सूर्य जिनके लिये बीत गया (अस्त हो गया) रहता है॥ १३॥

सब कै निंदा जे जड़ करहीं। ते चमगादुर होइ अवतरहीं॥
सुनहु तात अब मानस रोगा। जिन्ह ते दुख पावहिं सब लोगा॥ १४॥

जो मूर्ख मनुष्य सबकी निन्दा करते हैं, वे चमगीदड़ होकर जन्म लेते हैं। हे तात! अब मानस-रोग सुनिये, जिनसे सब लोग दुःख पाया करते हैं॥ १४॥

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला॥
काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा॥ १५॥

सब रोगोंकी जड़ मोह (अज्ञान) है। उन व्याधियोंसे फिर और बहुत-से शूल उत्पन्न होते हैं। काम वात है, लोभ अपार (बढ़ा हुआ) कफ है और क्रोध पित्त है जो सदा छाती जलाता रहता है॥ १५॥

प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई। उपजइ सन्यपात दुखदाई॥
बिषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब सूल नाम को जाना॥ १६॥

यदि कहीं ये तीनों भाई (वात, पित्त और कफ) प्रीति कर लें (मिल जायँ) तो दुःखदायक सन्निपात रोग उत्पन्न होता है। कठिनतासे प्राप्त (पूर्ण) होनेवाले जो विषयोंके मनोरथ हैं, वे ही सब शूल (कष्टदायक रोग) हैं; उनके नाम कौन जानता है (अर्थात् वे अपार हैं)॥ १६॥

ममता दादु कंडु इरषाई। हरष बिषाद गरह बहुताई॥
पर सुख देखि जरनि सोइ छई। कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई॥ १७॥

ममता दाद है, ईर्ष्या (डाह) खुजली है, हर्ष-विषाद गलेके रोगोंकी अधिकता है (गलगण्ड, कण्ठमाला या घेघा आदि रोग हैं)। पराये सुखको देखकर जो जलन होती है, वही क्षयी है। दुष्टता और मनकी कुटिलता ही कोढ़ है॥ १७॥

अहंकार अति दुखद डमरुआ। दंभ कपट मद मान नेहरुआ॥
तृस्ना उदरबृद्धि अति भारी। त्रिबिधि ईषना तरुन तिजारी॥ १८॥

अहंकार अत्यन्त दुःख देनेवाला डमरू (गाँठका) रोग है। दम्भ, कपट, मद और मान नहरुआ (नसोंका) रोग है। तृष्णा बड़ा भारी उदरवृद्धि (जलोदर) रोग है। तीन प्रकार (पुत्र, धन और मान) की प्रबल इच्छाएँ प्रबल तिजारी हैं॥ १८॥

जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका। कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका॥ १९॥

मत्सर और अविवेक दो प्रकारके ज्वर हैं। इस प्रकार अनेकों बुरे रोग हैं, जिन्हें

कहाँतक कहूँ॥ १९॥

दो०—एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि।
पीड़हिं संतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि॥ १२१ (क)॥

एक ही रोगके वश होकर मनुष्य मर जाते हैं, फिर ये तो बहुत-से असाध्य रोग हैं। ये जीवको निरन्तर कष्ट देते रहते हैं, ऐसी दशामें वह समाधि (शान्ति) को कैसे प्राप्त करें?॥ १२१ (क)॥

नेम धर्म आचार तप ग्यान जग्य जप दान।
भेषज पुनि कोटिन्ह नहिं रोग जाहिं हरिजान॥ १२१ (ख)॥

नियम, धर्म, आचार (उत्तम आचरण), तप, ज्ञान, यज्ञ, जप, दान तथा और भी करोड़ों ओषधियाँ हैं, परन्तु हे गरुड़जी! उनसे ये रोग नहीं जाते॥ १२१ (ख)॥

चौ०—एहि बिधि सकल जीव जग रोगी। सोक हरष भय प्रीति बियोगी॥
मानस रोग कछुक मैं गाए। हहिं सब कें लखि बिरलेन्ह पाए॥ १॥

इस प्रकार जगत्‌में समस्त जीव रोगी हैं, जो शोक, हर्ष, भय, प्रीति और वियोगके दुःखसे और भी दुःखी हो रहे हैं। मैंने ये थोड़े-से मानस-रोग कहे हैं। ये हैं तो सबको, परन्तु इन्हें जान पाये हैं कोई विरले ही॥ १॥

जाने ते छीजहिं कछु पापी। नास न पावहिं जन परितापी॥
बिषय कुपथ्य पाइ अंकुरे। मुनिहु हृदयँ का नर बापुरे॥ २॥

प्राणियोंको जलानेवाले ये पापी (रोग) जान लिये जानेसे कुछ क्षीण अवश्य हो जाते हैं, परन्तु नाशको नहीं प्राप्त होते। विषयरूप कुपथ्य पाकर ये मुनियोंके हृदयमें भी अङ्कुरित हो उठते हैं, तब बेचारे साधारण मनुष्य तो क्या चीज हैं॥ २॥

राम कृपाँ नासहिं सब रोगा। जौं एहि भाँति बनै संजोगा॥
सदगुर बैद बचन बिस्वासा। संजम यह न बिषय कै आसा॥ ३॥

यदि श्रीरामजीकी कृपासे इस प्रकारका संयोग बन जाय तो ये सब रोग नष्ट हो जायँ। सद्गुरुरूपी वैद्यके वचनमें विश्वास हो। विषयोंकी आशा न करे, यही संयम (परहेज) हो॥ ३॥

रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी॥
एहि बिधि भलेहिं सो रोग नसाहीं। नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं॥ ४॥

श्रीरघुनाथजीकी भक्ति संजीवनी जड़ी है। श्रद्धासे पूर्ण बुद्धि ही अनुपान (दवाके साथ लिया जानेवाला मधु आदि) है। इस प्रकारका संयोग हो तो वे रोग भले ही नष्ट हो जायँ, नहीं तो करोड़ों प्रयत्नोंसे भी नहीं जाते॥ ४॥

जानिअ तब मन बिरुज गोसाँई। जब उर बल बिराग अधिकाई॥
सुमति छुधा बाढ़इ नित नई। बिषय आस दुर्बलता गई॥ ५॥

हे गोसाईं! मनको नीरोग हुआ तब जानना चाहिये, जब हृदयमें वैराग्यका बल बढ़ जाय, उत्तम बुद्धिरूपी भूख नित नयी बढ़ती रहे और विषयोंकी आशारूपी दुर्बलता मिट जाय॥ ५॥

बिमल ग्यान जल जब सो नहाई। तब रह राम भगति उर छाई॥
सिव अज सुक सनकादिक नारद। जे मुनि ब्रह्म बिचार बिसारद॥ ६॥

[इस प्रकार सब रोगोंसे छूटकर] जब मनुष्य निर्मल ज्ञानरूपी जलमें स्नान कर लेता है, तब उसके हृदयमें रामभक्ति छा रहती है। शिवजी, ब्रह्माजी, शुकदेवजी, सनकादि और नारद आदि ब्रह्मविचारमें परम निपुण जो मुनि हैं॥ ६॥

सब कर मत खगनायक एहा। करिअ राम पद पंकज नेहा॥
श्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाहीं। रघुपति भगति बिना सुख नाहीं॥ ७॥

हे पक्षिराज! उन सबका मत यही है कि श्रीरामजीके चरणकमलोंमें प्रेम करना चाहिये। श्रुति, पुराण और सभी ग्रन्थ कहते हैं कि श्रीरघुनाथजीकी भक्तिके बिना सुख नहीं है॥ ७॥

कमठ पीठ जामहिं बरु बारा। बंध्या सुत बरु काहुहि मारा॥
फूलहिं नभ बरु बहुबिधि फूला। जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला॥ ८॥

कछुएकी पीठपर भले ही बाल उग आवें, बाँझका पुत्र भले ही किसीको मार डाले, आकाशमें भले ही अनेकों प्रकारके फूल खिल उठें; परन्तु श्रीहरिसे विमुख होकर जीव सुख नहीं प्राप्त कर सकता॥ ८॥

तृषा जाइ बरु मृगजल पाना। बरु जामहिं सस सीस बिषाना॥
अंधकारु बरु रबिहि नसावै। राम बिमुख न जीव सुख पावै॥ ९॥

मृगतृष्णाके जलको पीनेसे भले ही प्यास बुझ जाय, खरगोशके सिरपर भले ही सींग निकल आवें, अन्धकार भले ही सूर्यका नाश कर दे; परन्तु श्रीरामसे विमुख होकर जीव सुख नहीं पा सकता॥ ९॥

हिम ते अनल प्रगट बरु होई। बिमुख राम सुख पाव न कोई॥ १०॥

बर्फसे भले ही अग्नि प्रकट हो जाय (ये सब अनहोनी बातें चाहे हो जायँ), परन्तु श्रीरामसे विमुख होकर कोई भी सुख नहीं पा सकता॥ १०॥

दो०—बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल॥ १२२ (क)॥

जलको मथनेसे भले ही घी उत्पन्न हो जाय और बालू [को पेरने] से भले ही तेल निकल आवे; परन्तु श्रीहरिके भजन बिना संसाररूपी समुद्रसे नहीं तरा जा सकता, यह सिद्धान्त अटल है॥ १२२ (क)॥

मसकहि करइ बिरंचि प्रभु अजहि मसक ते हीन।
अस बिचारि तजि संसय रामहि भजहिं प्रबीन॥ १२२ (ख)॥

प्रभु मच्छरको ब्रह्मा कर सकते हैं और ब्रह्माको मच्छरसे भी तुच्छ बना सकते हैं। ऐसा विचारकर चतुर पुरुष सब सन्देह त्यागकर श्रीरामजीको ही भजते हैं॥ १२२ (ख)॥

श्लोक—विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे।
हरिं नरा भजन्ति येऽतिदुस्तरं तरन्ति ते॥ १२२ (ग)॥

मैं आपसे भलीभाँति निश्चित किया हुआ सिद्धान्त कहता हूँ—मेरे वचन अन्यथा (मिथ्या) नहीं हैं कि जो मनुष्य श्रीहरिका भजन करते हैं, वे अत्यन्त दुस्तर संसारसागरको [सहज ही] पार कर जाते हैं॥ १२२ (ग)॥

चौ०—कहेउँ नाथ हरि चरित अनूपा। ब्यास समास स्वमति अनुरूपा॥
श्रुति सिद्धांत इहइ उरगारी। राम भजिअ सब काज बिसारी॥ १॥

हे नाथ! मैंने श्रीहरिका अनुपम चरित्र अपनी बुद्धिके अनुसार कहीं विस्तारसे और कहीं संक्षेपसे कहा। हे सर्पोंके शत्रु गरुड़जी! श्रुतियोंका यही सिद्धान्त है कि सब काम भुलाकर (छोड़कर) श्रीरामजीका भजन करना चाहिये॥ १॥

प्रभु रघुपति तजि सेइअ काही। मोहि से सठ पर ममता जाही॥
तुम्ह बिग्यानरूप नहिं मोहा। नाथ कीन्हि मो पर अति छोहा॥ २॥

प्रभु श्रीरघुनाथजीको छोड़कर और किसका सेवन (भजन) किया जाय, जिनका मुझ-जैसे मूर्खपर भी ममत्व (स्नेह) है। हे नाथ! आप विज्ञानरूप हैं, आपको मोह नहीं है। आपने तो मुझपर बड़ी कृपा की है॥ २॥

पूँछिहु राम कथा अति पावनि। सुक सनकादि संभु मन भावनि॥
सत संगति दुर्लभ संसारा। निमिष दंड भरि एकउ बारा॥ ३॥

जो आपने मुझसे शुकदेवजी, सनकादि और शिवजीके मनको प्रिय लगनेवाली अति पवित्र रामकथा पूछी। संसारमें घड़ीभरका अथवा पलभरका एक बारका भी सत्संग दुर्लभ है॥ ३॥

देखु गरुड़ निज हृदयँ बिचारी। मैं रघुबीर भजन अधिकारी॥
सकुनाधम सब भाँति अपावन। प्रभु मोहि कीन्ह बिदित जग पावन॥ ४॥

हे गरुड़जी! अपने हृदयमें विचारकर देखिये, क्या मैं भी श्रीरामजीके भजनका अधिकारी हूँ? पक्षियोंमें सबसे नीच और सब प्रकारसे अपवित्र हूँ। परन्तु ऐसा होनेपर भी प्रभुने मुझको सारे जगत्‌को पवित्र करनेवाला प्रसिद्ध कर दिया [अथवा प्रभुने मुझको जगत्प्रसिद्ध पावन कर दिया]॥ ४॥

दो०—आजु धन्य मैं धन्य अति जद्यपि सब बिधि हीन।
निज जन जानि राम मोहि संत समागम दीन॥ १२३ (क)॥

यद्यपि मैं सब प्रकारसे हीन (नीच) हूँ, तो भी आज मैं धन्य हूँ, अत्यन्त धन्य हूँ, जो श्रीरामजीने मुझे अपना 'निज जन' जानकर संत-समागम दिया (आपसे मेरी भेंट करायी)॥ १२३ (क)॥

नाथ जथामति भाषेउँ राखेउँ नहिं कछु गोइ।
चरित सिंधु रघुनायक थाह कि पावइ कोइ॥ १२३ (ख)॥

हे नाथ! मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार कहा, कुछ भी छिपा नहीं रखा। [फिर भी] श्रीरघुवीरके चरित्र समुद्रके समान हैं; क्या उनकी कोई थाह पा सकता है?॥ १२३ (ख)॥

चौ०—सुमिरि राम के गुन गन नाना। पुनि पुनि हरष भुसुंडि सुजाना॥
महिमा निगम नेति करि गाई। अतुलित बल प्रताप प्रभुताई॥ १॥

श्रीरामचन्द्रजीके बहुत-से गुणसमूहोंका स्मरण कर-करके सुजान भुशुण्डिजी बार-बार हर्षित हो रहे हैं। जिनकी महिमा वेदोंने 'नेति-नेति' कहकर गायी है; जिनका बल, प्रताप और प्रभुत्व (सामर्थ्य) अतुलनीय है॥ १॥

सिव अज पूज्य चरन रघुराई। मो पर कृपा परम मृदुलाई॥
अस सुभाउ कहुँ सुनउँ न देखउँ। केहि खगेस रघुपति सम लेखउँ॥ २॥

जिन श्रीरघुनाथजीके चरण शिवजी और ब्रह्माजीके द्वारा पूज्य हैं, उनकी मुझपर कृपा होनी उनकी परम कोमलता है। किसीका ऐसा स्वभाव कहीं न सुनता हूँ, न देखता हूँ। अत: हे पक्षिराज गरुड़जी! मैं श्रीरघुनाथजीके समान किसे गिनूँ (समझूँ)?॥ २॥

साधक सिद्ध बिमुक्त उदासी। कबि कोबिद कृतग्य संन्यासी॥
जोगी सूर सुतापस ग्यानी। धर्म निरत पंडित बिग्यानी॥ ३॥

साधक, सिद्ध, जीवन्मुक्त, उदासीन (विरक्त), कवि, विद्वान्, कर्म [रहस्य] के ज्ञाता, संन्यासी, योगी, शूरवीर, बड़े तपस्वी, ज्ञानी, धर्मपरायण, पण्डित और विज्ञानी—॥ ३॥

तरहिं न बिनु सेएँ मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी॥
सरन गएँ मो से अघ रासी। होहिं सुद्ध नमामि अबिनासी॥ ४॥

ये कोई भी मेरे स्वामी श्रीरामजीका सेवन (भजन) किये बिना नहीं तर सकते। मैं उन्हीं श्रीरामजीको बार-बार नमस्कार करता हूँ। जिनकी शरण जानेपर मुझ-जैसे पापराशि भी शुद्ध (पापरहित) हो जाते हैं, उन अविनाशी श्रीरामजीको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ४॥

दो०—जासु नाम भव भेषज हरन घोर त्रय सूल।
सो कृपाल मोहि तो पर सदा रहउ अनुकूल॥ १२४(क)॥

जिनका नाम जन्म-मरणरूपी रोगकी [अव्यर्थ] औषध और तीनों भयंकर पीड़ाओं (आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक दु:खों) को हरनेवाला है, वे कृपालु श्रीरामजी मुझपर और आपपर सदा प्रसन्न रहें॥ १२४ (क)॥

सुनि भुसुंडि के बचन सुभ देखि राम पद नेह।
बोलेउ प्रेम सहित गिरा गरुड़ बिगत संदेह॥ १२४(ख)॥

भुशुण्डिजीके मंगलमय वचन सुनकर और श्रीरामजीके चरणोंमें उनका अतिशय प्रेम देखकर सन्देहसे भलीभाँति छूटे हुए गरुड़जी प्रेमसहित वचन बोले ॥ १२४ (ख)॥

चौ०—मैं कृतकृत्य भयउँ तव बानी। सुनि रघुबीर भगति रस सानी॥
राम चरन नूतन रति भई। माया जनित बिपति सब गई॥ १॥

श्रीरघुवीरके भक्ति-रसमें सनी हुई आपकी वाणी सुनकर मैं कृतकृत्य हो गया। श्रीरामजीके चरणोंमें मेरी नवीन प्रीति हो गयी और मायासे उत्पन्न सारी विपत्ति चली गयी॥ १॥

मोह जलधि बोहित तुम्ह भए। मो कहँ नाथ बिबिध सुख दए॥
मो पहिं होइ न प्रति उपकारा। बंदउँ तव पद बारहिं बारा॥ २॥

मोहरूपी समुद्रमें डूबते हुए मेरे लिये आप जहाज हुए। हे नाथ! आपने मुझे

बहुत प्रकारके सुख दिये (परम सुखी कर दिया)। मुझसे इसका प्रत्युपकार (उपकारके बदलेमें उपकार) नहीं हो सकता। मैं तो आपके चरणोंकी बार-बार वन्दना ही करता हूँ॥ २॥

पूरन काम राम अनुरागी। तुम्ह सम तात न कोउ बड़भागी॥
संत बिटप सरिता गिरि धरनी। पर हित हेतु सबन्ह कै करनी॥ ३॥

आप पूर्णकाम हैं और श्रीरामजीके प्रेमी हैं। हे तात! आपके समान कोई बड़भागी नहीं है। संत, वृक्ष, नदी, पर्वत और पृथ्वी इन सबकी क्रिया पराये हितके लिये ही होती है॥ ३॥

संत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह परि कहै न जाना॥
निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता॥ ४॥

संतोंका हृदय मक्खनके समान होता है, ऐसा कवियोंने कहा है; परन्तु उन्होंने [असली बात] कहना नहीं जाना; क्योंकि मक्खन तो अपनेको ताप मिलनेसे पिघलता है और परम पवित्र संत दूसरोंके दुःखसे पिघल जाते हैं॥ ४॥

जीवन जन्म सुफल मम भयऊ। तव प्रसाद संसय सब गयऊ॥
जानेहु सदा मोहि निज किंकर। पुनि पुनि उमा कहइ बिहंगबर॥ ५॥

मेरा जीवन और जन्म सफल हो गया। आपकी कृपासे सब सन्देह चला गया। मुझे सदा अपना दास ही जानियेगा। [शिवजी कहते हैं—] हे उमा! पक्षिश्रेष्ठ गरुड़जी बार-बार ऐसा कह रहे हैं॥ ५॥

दो०—तासु चरन सिरु नाइ करि प्रेम सहित मतिधीर।
गयउ गरुड़ बैकुंठ तब हृदयँ राखि रघुबीर॥ १२५ (क)॥

उन (भुशुण्डिजी) के चरणोंमें प्रेमसहित सिर नवाकर और हृदयमें श्रीरघुवीरको धारण करके धीरबुद्धि गरुड़जी तब वैकुण्ठको चले गये॥ १२५ (क)॥

गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन।
बिनु हरि कृपा न होइ सो गावहिं बेद पुरान॥ १२५ (ख)॥

हे गिरिजे! संत-समागमके समान दूसरा कोई लाभ नहीं है। पर वह (संत-समागम) श्रीहरिकी कृपाके बिना नहीं हो सकता, ऐसा वेद और पुराण गाते हैं॥ १२५ (ख)॥

चौ०—कहेउँ परम पुनीत इतिहासा। सुनत श्रवन छूटहिं भव पासा॥
प्रनत कल्पतरु करुना पुंजा। उपजइ प्रीति राम पद कंजा॥ १॥

मैंने यह परम पवित्र इतिहास कहा, जिसे कानोंसे सुनते ही भवपाश (संसारके बन्धन) छूट जाते हैं, और शरणागतोंको [उनके इच्छानुसार फल देनेवाले] कल्पवृक्ष तथा दयाके समूह श्रीरामजीके चरणकमलोंमें प्रेम उत्पन्न होता है॥ १॥

मन क्रम बचन जनित अघ जाई। सुनहिं जे कथा श्रवन मन लाई॥
तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग बिराग ग्यान निपुनाई॥ २॥

जो कान और मन लगाकर इस कथाको सुनते हैं, उनके मन, वचन और कर्म (शरीर) से उत्पन्न सब पाप नष्ट हो जाते हैं। तीर्थयात्रा आदि बहुत-से साधन, योग,

वैराग्य और ज्ञानमें निपुणता— ॥ २ ॥

नाना कर्म धर्म ब्रत दाना। संजम दम जप तप मख नाना॥
भूत दया द्विज गुर सेवकाई। बिद्या बिनय बिबेक बड़ाई॥ ३॥

अनेकों प्रकारके कर्म, धर्म, व्रत और दान; अनेकों संयम, दम, जप, तप और यज्ञ, प्राणियोंपर दया, ब्राह्मण और गुरुकी सेवा; विद्या, विनय और विवेककी बड़ाई [आदि]— ॥ ३ ॥

जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरि भगति भवानी॥
सो रघुनाथ भगति श्रुति गाई। राम कृपाँ काहूँ एक पाई॥ ४॥

जहाँतक वेदोंने साधन बतलाये हैं, हे भवानी! उन सबका फल श्रीहरिकी भक्ति ही है। किन्तु श्रुतियोंमें गायी हुई वह श्रीरघुनाथजीकी भक्ति श्रीरामजीकी कृपासे किसी एक (विरले) ने ही पायी है॥ ४॥

दो०—मुनि दुर्लभ हरि भगति नर पावहिं बिनहिं प्रयास।
जे यह कथा निरंतर सुनहिं मानि बिस्वास॥ १२६॥

किन्तु जो मनुष्य विश्वास मानकर यह कथा निरन्तर सुनते हैं, वे बिना ही परिश्रम उस मुनिदुर्लभ हरिभक्तिको प्राप्त कर लेते हैं॥ १२६॥

चौ०—सोइ सर्बग्य गुनी सोइ ग्याता। सोइ महि मंडित पंडित दाता॥
धर्म परायन सोइ कुल त्राता। राम चरन जा कर मन राता॥ १॥

जिसका मन श्रीरामजीके चरणोंमें अनुरक्त है, वही सर्वज्ञ (सब कुछ जाननेवाला) है, वही गुणी है, वही ज्ञानी है। वही पृथ्वीका भूषण, पण्डित और दानी है, वही धर्मपरायण है और वही कुलका रक्षक है॥ १॥

नीति निपुन सोइ परम सयाना। श्रुति सिद्धांत नीक तेहिं जाना॥
सोइ कबि कोबिद सोइ रनधीरा। जो छल छाड़ि भजइ रघुबीरा॥ २॥

जो छल छोड़कर श्रीरघुवीरका भजन करता है, वही नीतिमें निपुण है, वही परम बुद्धिमान् है। उसीने वेदोंके सिद्धान्तको भलीभाँति जाना है। वही कवि, वही विद्वान् तथा वही रणधीर है॥ २॥

धन्य देस सो जहँ सुरसरी। धन्य नारि पतिब्रत अनुसरी॥
धन्य सो भूपु नीति जो करई। धन्य सो द्विज निज धर्म न टरई॥ ३॥

वह देश धन्य है जहाँ श्रीगङ्गाजी हैं, वह स्त्री धन्य है जो पातिव्रत-धर्मका पालन करती है। वह राजा धन्य है जो न्याय करता है और वह ब्राह्मण धन्य है जो अपने धर्मसे नहीं डिगता॥ ३॥

सो धन धन्य प्रथम गति जाकी। धन्य पुन्य रत मति सोइ पाकी॥
धन्य घरी सोइ जब सतसंगा। धन्य जन्म द्विज भगति अभंगा॥ ४॥

वह धन धन्य है जिसकी पहली गति होती है (जो दान देनेमें व्यय होता है)। वही बुद्धि धन्य और परिपक्व है जो पुण्यमें लगी हुई है। वही घड़ी धन्य है जब सत्संग हो और वही जन्म धन्य है जिसमें ब्राह्मणकी अखण्ड भक्ति हो॥ ४॥

[धनकी तीन गतियाँ होती हैं—दान, भोग और नाश। दान उत्तम है, भोग मध्यम है और नाश नीच गति है। जो पुरुष न देता है, न भोगता है, उसके धनकी तीसरी गति होती है।]

दो०—सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत॥ १२७॥

हे उमा! सुनो, वह कुल धन्य है, संसारभरके लिये पूज्य है और परम पवित्र है, जिसमें श्रीरघुवीरपरायण (अनन्य रामभक्त) विनम्र पुरुष उत्पन्न हो॥ १२७॥

चौ०—मति अनुरूप कथा मैं भाषी। जद्यपि प्रथम गुप्त करि राखी॥
तव मन प्रीति देखि अधिकाई। तब मैं रघुपति कथा सुनाई॥ १॥

मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार यह कथा कही, यद्यपि पहले इसको छिपाकर रखा था। जब तुम्हारे मनमें प्रेमकी अधिकता देखी तब मैंने श्रीरघुनाथजीकी यह कथा तुमको सुनायी॥ १॥

यह न कहिअ सठही हठसीलहि। जो मन लाइ न सुन हरि लीलहि॥
कहिअ न लोभिहि क्रोधिहि कामिहि। जो न भजइ सचराचर स्वामिहि॥ २॥

यह कथा उनसे न कहनी चाहिये जो शठ (धूर्त) हों, हठी स्वभावके हों और श्रीहरिकी लीलाको मन लगाकर न सुनते हों। लोभी, क्रोधी और कामीको, जो चराचरके स्वामी श्रीरामजीको नहीं भजते, यह कथा नहीं कहनी चाहिये॥ २॥

द्विज द्रोहिहि न सुनाइअ कबहूँ। सुरपति सरिस होइ नृप जबहूँ॥
राम कथा के तेइ अधिकारी। जिन्ह कें सत संगति अति प्यारी॥ ३॥

ब्राह्मणोंके द्रोहीको, यदि वह देवराज (इन्द्र) के समान ऐश्वर्यवान् राजा भी हो, तब भी यह कथा कभी न सुनानी चाहिये। श्रीरामकी कथाके अधिकारी वे ही हैं जिनको सत्संगति अत्यन्त प्रिय है॥ ३॥

गुर पद प्रीति नीति रत जेई। द्विज सेवक अधिकारी तेई॥
ता कहँ यह बिसेष सुखदाई। जाहि प्रानप्रिय श्रीरघुराई॥ ४॥

जिनकी गुरुके चरणोंमें प्रीति है, जो नीतिपरायण हैं और ब्राह्मणोंके सेवक हैं, वे ही इसके अधिकारी हैं और उसको तो यह कथा बहुत ही सुख देनेवाली है, जिसको श्रीरघुनाथजी प्राणके समान प्यारे हैं॥ ४॥

दो०—राम चरन रति जो चह अथवा पद निर्बान।
भाव सहित सो यह कथा करउ श्रवन पुट पान॥ १२८॥

जो श्रीरामजीके चरणोंमें प्रेम चाहता हो,या मोक्षपद चाहता हो, वह इस कथारूपी अमृतको प्रेमपूर्वक अपने कानरूपी दोनेसे पिये॥ १२८॥

चौ०—राम कथा गिरिजा मैं बरनी। कलि मल समनि मनोमल हरनी॥
संसृति रोग सजीवन मूरी। राम कथा गावहिं श्रुति सूरी॥ १॥

हे गिरिजे! मैंने कलियुगके पापोंका नाश करनेवाली और मनके मलको दूर करनेवाली रामकथाका वर्णन किया। यह रामकथा संसृति (जन्म-मरण) रूपी रोगके [नाशके] लिये संजीवनी जड़ी है, वेद और विद्वान् पुरुष ऐसा कहते हैं॥ १॥

एहि महँ रुचिर सप्त सोपाना। रघुपति भगति केर पंथाना॥
अति हरिकृपा जाहि पर होई। पाउँ देइ एहिं मारग सोई॥ २॥

इसमें सात सुन्दर सीढ़ियाँ हैं जो श्रीरघुनाथजीकी भक्तिको प्राप्त करनेके मार्ग हैं। जिसपर श्रीहरिकी अत्यन्त कृपा होती है, वही इस मार्गपर पैर रखता है॥ २॥

मन कामना सिद्धि नर पावा। जे यह कथा कपट तजि गावा॥
कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं। ते गोपद इव भवनिधि तरहीं॥ ३॥

जो कपट छोड़कर यह कथा गाते हैं, वे मनुष्य अपनी मनःकामनाकी सिद्धि पा लेते हैं। जो इसे कहते-सुनते और अनुमोदन (प्रशंसा) करते हैं, वे संसाररूपी समुद्रको गौके खुरसे बने हुए गड्ढेकी भाँति पार कर जाते हैं॥ ३॥

सुनि सब कथा हृदय अति भाई। गिरिजा बोली गिरा सुहाई॥
नाथ कृपाँ मम गत संदेहा। राम चरन उपजेउ नव नेहा॥ ४॥

[याज्ञवल्क्यजी कहते हैं—] सब कथा सुनकर श्रीपार्वतीजीके हृदयको बहुत ही प्रिय लगी और वे सुन्दर वाणी बोलीं—स्वामीकी कृपासे मेरा सन्देह जाता रहा और श्रीरामजीके चरणोंमें नवीन प्रेम उत्पन्न हो गया॥ ४॥

दो०—मैं कृतकृत्य भइउँ अब तव प्रसाद बिस्वेस।
उपजी राम भगति दृढ़ बीते सकल कलेस॥ १२९॥

हे विश्वनाथ! आपकी कृपासे अब मैं कृतार्थ हो गयी। मुझमें दृढ़ रामभक्ति उत्पन्न हो गयी और मेरे सम्पूर्ण क्लेश बीत गये (नष्ट हो गये)॥ १२९॥

चौ०—यह सुभ संभु उमा संबादा। सुख संपादन समन बिषादा॥
भव भंजन गंजन संदेहा। जन रंजन सज्जन प्रिय एहा॥ १॥

शम्भु-उमाका यह कल्याणकारी संवाद सुख उत्पन्न करनेवाला और शोकका नाश करनेवाला है। जन्म-मरणका अन्त करनेवाला, सन्देहोंका नाश करनेवाला, भक्तोंको आनन्द देनेवाला और संत पुरुषोंको प्रिय है॥ १॥

राम उपासक जे जग माहीं। एहि सम प्रिय तिन्ह कें कछु नाहीं॥
रघुपति कृपाँ जथामति गावा। मैं यह पावन चरित सुहावा॥ २॥

जगत्‌में जो (जितने भी) रामोपासक हैं, उनको तो इस रामकथाके समान कुछ भी प्रिय नहीं है। श्रीरघुनाथजीकी कृपासे मैंने यह सुन्दर और पवित्र करनेवाला चरित्र अपनी बुद्धिके अनुसार गाया है॥ २॥

एहिं कलिकाल न साधन दूजा। जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा॥
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि॥ ३॥

[तुलसीदासजी कहते हैं—] इस कलिकालमें योग, यज्ञ, जप, तप, व्रत और पूजन आदि कोई दूसरा साधन नहीं है। बस, श्रीरामजीका ही स्मरण करना, श्रीरामजीका ही गुण गाना और निरन्तर श्रीरामजीके ही गुणसमूहोंको सुनना चाहिये॥ ३॥

जासु पतित पावन बड़ बाना। गावहिं कबि श्रुति संत पुराना॥
ताहि भजहि मन तजि कुटिलाई। राम भजें गति केहिं नहिं पाई॥ ४॥

पतितोंको पवित्र करना जिनका महान् (प्रसिद्ध) बाना है—ऐसा कवि, वेद, संत और पुराण गाते हैं—रे मन! कुटिलता त्यागकर उन्हींको भज। श्रीरामको भजनेसे किसने परम गति नहीं पायी?॥ ४॥

छं०—पाई न केहिं गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना।
गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना॥
आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे।
कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते॥ १॥

अरे मूर्ख मन! सुन, पतितोंको भी पावन करनेवाले श्रीरामको भजकर किसने परम गति नहीं पायी? गणिका, अजामिल, व्याध, गीध, गज आदि बहुत-से दुष्टोंको उन्होंने तार दिया। आभीर, यवन, किरात, खस, श्वपच (चाण्डाल) आदि जो अत्यन्त पापरूप ही हैं, वे भी केवल एक बार जिनका नाम लेकर पवित्र हो जाते हैं, उन श्रीरामजीको मैं नमस्कार करता हूँ॥ १॥

रघुबंसभूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं।
कलि मल मनोमल धोइ बिनु श्रम राम धाम सिधावहीं॥
सत पंच चौपाईं मनोहर जानि जो नर उर धरै।
दारुन अबिद्या पंच जनित बिकार श्री रघुबर हरै॥ २॥

जो मनुष्य रघुवंशके भूषण श्रीरामजीका यह चरित्र कहते हैं, सुनते हैं और गाते हैं, वे कलियुगके पाप और मनके मलको धोकर बिना ही परिश्रम श्रीरामजीके परमधामको चले जाते हैं। [अधिक क्या] जो मनुष्य पाँच-सात चौपाइयोंको भी मनोहर जानकर [अथवा रामायणकी चौपाइयोंको श्रेष्ठ पञ्च (कर्तव्याकर्तव्यका सच्चा निर्णायक) जानकर उनको] हृदयमें धारण कर लेता है, उसके भी पाँच प्रकारकी अविद्याओंसे उत्पन्न विकारोंको श्रीरामजी हरण कर लेते हैं। (अर्थात् सारे रामचरित्रकी तो बात ही क्या है, जो पाँच-सात चौपाइयोंको भी समझकर उनका अर्थ हृदयमें धारण कर लेते हैं, उनके भी अविद्याजनित सारे क्लेश श्रीरामचन्द्रजी हर लेते हैं)॥ २॥

सुंदर सुजान कृपा निधान अनाथ पर कर प्रीति जो।
सो एक राम अकाम हित निर्बानप्रद सम आन को॥
जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदासहूँ।
पायो परम बिश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ॥ ३॥

[परम] सुन्दर, सुजान और कृपानिधान तथा जो अनाथोंपर प्रेम करते हैं, ऐसे एक श्रीरामचन्द्रजी ही हैं। इनके समान निष्काम (निःस्वार्थ) हित करनेवाला (सुहृद्) और मोक्ष देनेवाला दूसरा कौन है? जिनकी लेशमात्र कृपासे मन्दबुद्धि तुलसीदासने भी परम शान्ति प्राप्त कर ली, उन श्रीरामजीके समान प्रभु कहीं भी नहीं हैं॥ ३॥

दो०—मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंस मनि हरहु बिषम भव भीर॥ १३० (क)॥

हे श्रीरघुवीर! मेरे समान कोई दीन नहीं है और आपके समान कोई हित करनेवाला नहीं है। ऐसा विचारकर हे रघुवंशमणि! मेरे जन्म-मरणके दुःखका हरण कर लीजिये॥ १३० (क)॥

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥ १३० (ख

जैसे कामीको स्त्री प्रिय लगती है और लोभीको जैसे धन प्यारा ल वैसे ही हे रघुनाथजी! हे रामजी! आप निरन्तर मुझे प्रिय लगिये॥ १३० (

श्लोक—यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमं
श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्त्यै तु रामायणम्।
मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमःशान्तये
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्॥

श्रेष्ठ कवि भगवान् श्रीशंकरजीने पहले जिस दुर्गम मानस-रामायणकी, श्री चरणकमलोंमें नित्य-निरन्तर [अनन्य] भक्ति प्राप्त होनेके लिये रचना की मानस-रामायणको श्रीरघुनाथजीके नाममें निरत मानकर अपने अन्तःकरणके अन्ध मिटानेके लिये तुलसीदासने इस मानसके रूपमें भाषाबद्ध किया॥ १॥

पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम्।
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये
ते संसारपतङ्गघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः॥ २

यह श्रीरामचरितमानस पुण्यरूप, पापोंका हरण करनेवाला, सदा कल्या विज्ञान और भक्तिको देनेवाला, माया, मोह और मलका नाश करनेवाला, परम प्रेमरूपी जलसे परिपूर्ण तथा मंगलमय है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस मानसर गोता लगाते हैं, वे संसाररूपी सूर्यकी अति प्रचण्ड किरणोंसे नहीं जलते॥

मासपारायण, तीसवाँ विश्राम।

नवाह्नपारायण, नवाँ विश्राम

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने सप्तमः सोपानः

कलियुगके समस्त पापोंका नाश करनेवाले श्रीरामचरितमानसका सातवाँ सोपान समाप्त हुआ।

(उत्तरकाण्ड समाप्त)